

विश्व, प्रतिविश्व एवं श्यामविवर



विज्ञानाचार्य कनकनंदीजी गुरुदेव

विश्व, प्रति-विश्व एवं श्याम विवर

(Universe, Antiuniverse and Black Hole)

इस शोधपूर्ण गहन, गूढ़, क्लिष्ट कृति में लोक / विश्व / समग्र / ब्रह्माण्ड (जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल) प्रतिविश्व / अलोक (केवल शुद्ध आकाश) तथा अति रहस्यमय, विचित्रतापूर्ण, भयंकर, घनान्धकारमय, प्रचण्ड सान्द्रतामय एवं शक्ति से युक्त तमस्कंध / श्यामविवर का दार्शनिक एवं वैज्ञानिक समीक्षापूर्ण वर्णन है। इस में तमस्कंध एवं श्यामविवर की तुलनात्मक समानता की परिकल्पनात्मक समीक्षा की गई है। जिस **Black Hole** (श्यामविवर) का पूर्ण निर्णयात्मक शोध-बोध आधुनिक विज्ञान में भी अभी तक नहीं हो पाया है उसका पूर्ण शोध-बोध विश्व के सर्वश्रेष्ठ आध्यात्मिक महावैज्ञानिक विश्वज्ञ / सर्वज्ञ / अनंतज्ञानी तीर्थकर - केवली भगवान् ने करोड़ों - अरबों वर्ष पहले कर लिया था तथा दिव्यध्वनि के माध्यम से दूसरों को बताया था। इस संबंधी लिखित वर्णन प्रायः दो हजार वर्ष प्राचीन जैन शास्त्रों में अभी भी उपलब्ध हैं। यह श्याम विवर पुद्गल द्रव्य (भौतिक-रासायनिक तत्व) की विभिन्न गुणात्मक शक्ति की विचित्र गतिविधियाँ है। जिसको समझने के लिए आधुनिक विज्ञान भी अभीतक दिग्मूढ़ / असमर्थ है। ऐसे आश्चर्यकारी श्याम-विवर के साथ-2 विश्व एवं प्रतिविश्व का सानंद आश्चर्यपूर्ण वर्णन का अध्ययन करें इस नवीन, मौलिक, शोधपूर्ण कृति में।

- आचार्य कनकनंदी

लेखक

वैज्ञानिकाचार्य कनकनन्दीजी गुरुदेव

धर्म-दर्शन-विज्ञान शोध संस्थान तथा धर्म-दर्शन-सेवा संस्थान - ग्रंथांक - 136

विश्व, प्रतिविश्व एवं श्याम विवर

(Universe, Antiuniverse and Black Hole)

पावन प्रसंग - भगवान महावीर की 2600वीं जन्म जयन्ती
लेखक - विज्ञानाचार्यश्री कनकनंदीजी गुरुदेव

मूल्य : (ज्ञान प्रचारार्थ आप की सहयोग राशि) : 25.00

संस्करण : प्रथम प्रतियाँ : 1000

प्रकाशन वर्ष : 2002

प्रद्युम्न एस. झवेरी (M.S.E.E.) अमेरीका
परम शिरोमणि संरक्षक : धर्म-दर्शन सेवा संस्थान

www JainKanaknandhi.org
E:mail - Info @ JainKanaknandhi.org.
Jain kanaknandhi@rediffmail.com

1. धर्म दर्शन विज्ञान शोध संस्थान- बड़ौत, मुजफ्फरनगर, कोटा, उदयपुर, सलूमबर, मुंबई, अमेरीका
2. धर्म दर्शन सेवा संस्थान- उदयपुर (राज.)
पंजीयन क्रमांक 118/उदयपुर 01-02 अमेरीका

द्रव्यदाता/ज्ञानदानी :

प्रो. श्री सुशील चन्द्र जैन (प्रज्ञापुंज)
(धर्म दर्शन विज्ञान शोध संस्थान के संस्थापक सदस्य)
नया बाजार, बड़ौत (उ.प्र.)

इस पुस्तक के ज्ञान-दान दाता



श्री सुशीलचन्द्र जी जैन (संस्थापक जैन धर्म शोध संस्थान)
एवं सौ.प्रेमलता जैन (बड़ौत) आ श्री कनकनंदीजीको
पिछी प्रदान करते हुए ।

प्रकाशन एवं प्राप्ति स्थान-

(1) प्रो. श्री सुशीलचन्द्रजी जैन-

'धर्म-दर्शन-विज्ञान शोध संस्थान' निकट दि. जैन धर्मशाला, बड़ौत
फोन. नं. (01234) 62845

(2) श्रीमती रत्नमाला जैन C/o डॉ. राजमलजी जैन

4-5 आदर्श कॉलोनी पुलाँ, उदयपुर (राज.) फो. नं. (0294) 440793

(3) श्री गुणपालजी जैन

बेहड़ा भवन 87/1 कुंदनपुरा मुजफ्फरनगर फो नं. : (0131) 450229

(4) श्रीमती लक्ष्मी गुरुचरण जी जैन

144 मुवी टावर नीयर, मिल्लतनगर लोखण्डवाला कॉम्पलेक्स,
अंधेरी (प.) मुंबई-400053

फोन नं. : (022) 6327152, 6312124, 6327152

(5) 'सेवाश्री' सुरेखा जैन (शिक्षिका) w/o वीरेन्द्रकुमार डालचन्दजी गड़िया

कपड़े के व्यापारी - सलुम्बर जि. उदयपुर पिन. 313001

फोन नं. : (02906) 32043

(6) श्री महावीर कुमार जैन

13 अग्रसेन कॉलोनी, दादावाड़ी कोटा फोन नं. : (0744) 410818

(7) धर्म दर्शन सेवा संस्थान

C/o चन्द्रप्रभु मंदिर, आयड़, छोटूलाल चित्तोड़ा

आयड़ बस स्टॉप के पास, उदयपुर-313001 (राज.)

फोन न. 413565

(8) Pradhuman S. Zaveri, (M.S., Elect. Eng.)

5829, Broad Well Drive, Plano, TX. 75093 (U.S.A.)

E-mail : laxmizaveri@yahoo.com, Ph. : 011-972-608-0400

लेसर टाईप सेटर्स :

श्री कुन्थुसागर ग्राफिक्स सेन्टर 25, शिरोमणि बंगलोज,

सी.टी.एम. चार रस्ता के पास, अहमदाबाद-380026

फोन - 5850744, 5851771

मंगल जिज्ञासा

— जिज्ञासु डॉ. एन.एल. कछारा— उदयपुर
भूतपूर्व निदेशक— कमला नेहरू प्रौद्योगिकी संस्थान, सुलतानपुर
एवं सचिव धर्म दर्शन सेवा संस्थान

प्रभारी नैतिक शिक्षा — अन्तरराष्ट्रीय गायत्री परिवार

ब्रह्माण्ड बहुत रहस्यमय है। असंख्य निहारिकाएँ एक-दूसरों से बहुत दूर रहते हुए सतत भ्रमण कर रही हैं। हर निहारिका में असंख्य तारागण भी दूरी रखते हुए वर्तुलाकार पथ पर घूमते रहते हैं। हर तारों का अपना परिवार है जिसमें ग्रह, उपग्रह आदि पिण्ड तारे की परिक्रमा करते रहते हैं। जैसे अपना सूर्य है। प्रत्येक निहारिका का विस्तार इतना होता है कि प्रकाश को एक छोर से दूसरे छोर तक जाने में लाखों वर्ष लग जाते हैं। फिर ब्रह्माण्ड के विस्तार का तो अनुमान लगाना ही कठिन है। अन्तरिक्ष विज्ञान की अपूर्व प्रगति के बाद भी ब्रह्माण्ड के छोर को आज तक नहीं देखा जा सका है और इसकी संभावना भी कम है। इस ज्ञात स्वरूप के अतिरिक्त ब्रह्माण्ड का अधिकतर भाग आज भी अज्ञात है। रहस्यों की परत वैज्ञानिक प्रगति के साथ खुलती जा रही है। ऐसा ही एक रहस्य है श्याम विवर (Black Hole)। वैज्ञानिकों का कहना है कि यह एक प्रकार का पिण्ड है जिसका घनत्व इतना अधिक है कि उसके गुरुत्वाकर्षण से प्रकाश किरणें भी उसके निकट जाने पर आकर्षित होकर उसमें समाहित हो जाती हैं और वह एक काले धब्बे के रूप में परिलक्षित होता है। क्या ऐसे ब्रह्माण्ड के बारे में आधुनिक विज्ञान के उदय से पहले भी कुछ ज्ञात था?

हमारे शास्त्र बताते हैं कि प्राचीनकाल में भी विज्ञान बहुत विकसित था परन्तु उसका स्वरूप भिन्न था। वैज्ञानिक जानकारी का मुख्य स्रोत आध्यात्म था। आध्यात्म के बल पर हमारे ऋषि-मुनियों ने ब्रह्माण्ड के कई रहस्य प्रगट किये थे। तीर्थंकरों व अन्य सर्वज्ञों ने ब्रह्माण्ड के कई रहस्यों के बारे में जानकारी दी थी। लेकिन उनकी शैली बिलकुल भिन्न थी। जनसाधारण की आस्था, श्रद्धा से जोड़ने तथा उन्हें समझाने के लिए शक्ति को दैवी का रूप माना गया। सूर्य, चंद्र, ग्रह, नक्षत्र, पृथ्वी आदि को देवस्वरूप माना गया। अलंकारिक भाषा का प्रयोग किया गया। जिससे कि इन अन्तरिक्ष पिण्डों के गुणों की व्याख्या की जा सके। शास्त्रों में पाया गया विवरण आज हास्यास्पद सा लग सकता है। क्योंकि वह आज हमारी समझ

और जानकारी से मेल नहीं खाता। फिर भी गहन चिंतन-मनन से ऐसे ज्ञान और रहस्यों को खोजा जा सकता है जो आज भी प्रासंगिक हैं। सही जानकारी होने पर आश्चर्यचकित ही रह जाना पड़ता है कि कैसे हमारे ऋषिमुनियों ने ऐसे रहस्यों को जान लिया जो आधुनिक विज्ञान की पहुँच से अभी भी बाहर हैं।

इस प्रकार के अध्ययन में वैज्ञानिक दृष्टिकोण, शास्त्रीयज्ञान तथा आध्यात्म पुरुषार्थ की आवश्यकता होती है। परम पूज्य आचार्य श्री कनकनंदीजी गुरुदेव में हम एक ऐसा ही व्यक्तित्व पाते हैं। जैन शास्त्रों में वर्णित अनेक रहस्यों को खोजने का श्रेय आपको जाता है। आपका मानना है कि जैनशास्त्रों में उल्लेखित तमस्कंध आधुनिक विज्ञान द्वारा खोजे गये श्याम विवर ही हैं। आपने अपनी वर्तमान कृति में ब्रह्माण्ड में स्थित लोकाकाश-अलोकाकाश को समझाते हुए जैन शास्त्रों के अनुसार तम स्कंध का विस्तृत वर्णन किया है। ब्रह्माण्ड व श्यामविवर की आधुनिक विज्ञान के परिप्रेक्ष्य में जानकारी देते हुए यह बताने का प्रयत्न किया है कि ये तमस्कंध आज के श्याम विवर ही हैं। आशा है तमस्कंध का यह ज्ञान आधुनिक अंतरिक्षविज्ञान को एक नई दिशा देगा। मेरी कामना है कि आपकी प्रतिभाशाली लेखनी से ऐसे कई शास्त्रीय रहस्य जन साधारण के कल्याण के लिए प्रकट होते रहें।

संत समागम सर्व धर्म सम्मेलन में प्रवचन करते हुए विज्ञानाचार्य

श्री कनकनंदीजी गुरुदेव



विषय अनुक्रमणिका

	विषय	पृ.सं.
	प्रवेश द्वार (विश्व, प्रतिविश्व एवं श्याम-विवर)	1
अध्याय: 1	ब्रह्माण्ड (विश्व लोक) का वर्णन	10
I	त्रसनाडी	13
II	तीन लोक विभाग	15
III	अधोलोक का वर्णन	16
IV	ऊर्ध्वलोक का वर्णन	18
V	मध्यलोक का वर्णन	19
अध्याय: 2	ब्रह्माण्ड के छः मौलिक द्रव्यों का वर्णन	21
I	जीव पुद्गल द्रव्य की गति का माध्यम धर्म द्रव्य	21
II	अधर्म द्रव्य (जीव पुद्गल की स्थिति में माध्यम)	22
III	समस्त द्रव्यों को स्थान देने वाला आकाश द्रव्य	25
IV	आकाश द्रव्य का विशेष लक्षण	28
V	जीव द्रव्य	29
VI	काल द्रव्य	29
VII	पुद्गल द्रव्य	31
अध्याय: 3	अजीव (अचेतन) द्रव्य तथा पुद्गल का विशेष वर्णन	37
I	अजीव द्रव्य के भेद-प्रभेद	37
II	मूर्त-अमूर्त लक्षण	38
III	मूर्त एवं अमूर्त द्रव्य	39
IV	पुद्गल की विभिन्न अवस्थाएँ	40
अध्याय: 4	द्रव्यों की प्रदेश संख्या तथा विस्तार	46
I	बहुप्रदेशी एवं एक प्रदेशी द्रव्य	46
II	अस्तित्व एवं काय की परिभाषा	47
III	द्रव्यों की प्रदेश संख्या	48
IV	परमाणु की परिभाषा	51
अध्याय: 5	लोकाकाश एवं अलोकाकाश (विश्व एवं प्रतिविश्व)	55
	(Universe and antiunivers)	55

I	प्रदेश एवं अप्रदेश की परिभाषा	63
अध्याय :6	जैन विज्ञान में वर्णित तमस्कन्ध (श्याम विवर)	68
अध्याय :7	वैज्ञानिक दृष्टि से विश्व (लोक)	81
अध्याय :8	विज्ञान की अपेक्षा तमस्काय (Black Hole)	84
I	गैस और धूल खाकर बढ़ते हैं ब्लैक होल	85
II	ब्लैक होल भँवर की तरह घूमते हैं	86
अध्याय :9	The Quantum Mechanics of Black Holes	89
अध्याय :10	प्रतिविश्व (एंटीयुनिवर्स) की खोज	101
I	एंटीद्रव्यों के द्वीप	102
II	दो विश्व की कल्पना	103
III	प्रतिपदार्थ और उसके रहस्य	103
IV	तारों के 'प्रलय' का परिणाम (नोवा और सुपरनोवा)	107
	आचार्य कनकनंदी गुरुदेव से वैज्ञानिक	110
	ए.पी. जैन की भेंट वार्ता / तत्वचर्चा	

आदर्श ग्राम पारडा इटीवार में चोका लगाकर आचार्य कनकनंदीजी को ससंध आहार देकर आशीर्वाद लेते हुए जैन एवं ब्राह्मण बालक-बालिकाएँ।



प्रवेश द्वार

विश्व, प्रतिविश्व एवं श्याम-विवर

(Universe, Antiuniverse & Black Hole)

सच्चे धर्म एवं धार्मिक व्यक्तियों का लक्ष्य परम सत्य का शोध-बोध एवं उसकी उपलब्धि है। इसे सत्य की उपलब्धि के लिए ही समस्त धार्मिक क्रिया कलाप, गतिविधियाँ, साधना-उपासना है और इसका फल है आनंद की उपलब्धि या अनुभूति। इसीलिए संक्षिप्ततः धर्म को और धर्म के फल को हम 'सच्चिदानंद या सत्यं-शिवं-सुन्दरं' कह सकते हैं। इसका उपाय है 'असतो मा सद्गम्यः, तमसो मा ज्योर्तिगमयः, मृत्योमाः अमृतगमयः' अर्थात् धर्म एवं धार्मिक व्यक्ति की भावना / कामना / कार्यप्रणाली होती है- "असत् से सत् की ओर गमन करना, अज्ञानरूपी अंधकार से ज्ञानरूपी प्रकाश की ओर प्रयाण करना, मृत्यु से अर्थात् अशाश्वतिक से अमृत या शाश्वत की ओर प्रयाण करना।" ऐसे जो आध्यात्मिक महान् साधक होते हैं वे स्वयं के जीवन को सत्य की विशालतम प्रयोगशाला बनाकर के अणु से लेकर ब्रह्माण्ड तक, स्व से लेकर विश्व तक का शोध बोध करते हैं एवं उसकी उपलब्धि भी करते हैं। जो संपूर्ण सत्य की उपलब्धि कर लेते हैं उन्हें ही केवली, सर्वज्ञ, तीर्थंकर, बुद्ध, अरहन्त, भगवान्, आत्मदृष्टा, विश्वज्ञ, विश्वविद्याविशारद, आप्त, त्रिकालज्ञ कहते हैं। इस पद्धति को आध्यात्मिक / दार्शनिक या साधना कह सकते हैं।

आधुनिक विज्ञान एवं वैज्ञानिकों की पद्धति भी सत्य के शोध-बोध के साथ-साथ उपलब्धि एवं विश्व कल्याणार्थ है। विज्ञान में भी सत्य को सर्वोपरि माना जाता है और किसी भी प्रकार दुराग्रह, संकीर्णता, पूर्वाग्रह, से रहित होकर सत्य का निरीक्षण-परीक्षण, अध्ययन, विश्लेषण, प्रतिपादन, प्रायोगिकरण किया जाता है। इस दृष्टि से कथंचित् धर्म / दर्शन तथा विज्ञान एक ही सत्य के उपासक हैं। इसीलिए अनेक क्षेत्र में, अनेक समय धर्म, दर्शन तथा विज्ञान परस्पर एक सत्य बिन्दु पर पहुँच जाते हैं; भले उनके मार्ग पृथक्-2 क्यों न हों। कभी-2 ये तीनों समानान्तर रेखा में आगे बढ़ते हुए प्रतीत होते हैं। उपरोक्त विषय का स्पष्टीकरण करने के लिए कुछ उदाहरण प्रस्तुत करता हूँ। जैसा कि योग या ध्यान यह मुख्यतः आध्यात्मिक साधना का एक अंग था जिसकी उपलब्धि आत्म उपलब्धि है और

आत्म उपलब्धि से अनंत सुख, शांति की उपलब्धि होती है; परन्तु इसको मानसिक स्वास्थ्य, शारीरिक स्वास्थ्य प्राप्ति के लिए और चमत्कारपूर्ण मंत्र आदि की सिद्धि के लिए भी इसका प्रयोग हो रहा है। इसीलिए योग आज केवल धार्मिक या आध्यात्मिक न होकर मनोवैज्ञानिक, आयुर्वेदिक (चिकित्सा विज्ञान) शिक्षा-मनोविज्ञान, मनोविज्ञान-चिकित्सा, तनावमुक्ति आदि में भी प्रयोग हो रहा है। इसीप्रकार अनेक धार्मिक सिद्धान्त हैं जो कि दर्शन, विज्ञान, आयुर्वेद, मनोविज्ञान, शिक्षा, कानून, राजनीति आदि में भी प्रयोग में लाये जाते हैं। इसीलिए धर्म को 'वस्तु का स्वभाव', 'जो धारण करे', 'सुख-शांति का मार्ग', 'मोक्षमार्ग', 'इहलोक-परलोक सुधार का उपाय' आदि कहते हैं। इसीलिए एकान्ततः धर्म हो या विज्ञान, दर्शन हो या शिक्षा, राजनीति हो या कानून पृथक्-2 होकर अपनी सत्ता / उपयोगिता, उपादेयता स्थिर नहीं रख सकते हैं; इसीलिए निरपेक्ष होकर किसी भी विषय का शोध-बोध, निर्णय, प्रायोगिककरण, निरीक्षण-परीक्षण होना संभव नहीं है। इसे ही जैन सिद्धान्त का 'अनेकान्तवाद' या आइन्स्टीन का 'सापेक्षवाद' कहते हैं। उपरोक्त समस्त दृष्टिकोण को लोकर मैंने इस 'विश्व, प्रतिविश्व एवं श्यामविवर' शोधपूर्ण निबंध में यत्किंचित् धार्मिक एवं वैज्ञानिक तथ्यों का संकलन, समन्वय, प्रस्तुतीकरण किया है।

ब्रह्माण्ड अनादि, अनंत, शाश्वतिक एवं परिणमनशील है। यह ब्रह्माण्ड अकृतिम, अनादि-अनिधन, प्राकृतिक और छःद्रव्यों के समूह स्वरूप है। इसे लोक, विश्व, ब्रह्माण्ड आदि नामों से अभिहित किया जाता है। अनंत अलोक के बीचोंबीच अर्थात् केन्द्र में यह लोक प्राकृतिक रूप से अनादि से ही अवस्थित है। लोक की दशों दिशाओं में अनंत-2 आकाश होने के कारण ब्रह्माण्ड / लोकाकाश आकाश के केन्द्र में है। इस दृष्टि से छः द्रव्यों के समूहभूत लोक को विश्व और उससे पृथक् अलोकाकाश को अलोक या प्रतिविश्व कहते हैं।

ब्रह्माण्ड में (1) सचेतन द्रव्य (चैतन्य गुण युक्त द्रव्य अर्थात् जीवः) (2) पुद्गल (स्पर्श, रस, गंध, वर्ण से युक्त भौतिक, रासायनिक तत्व, मूर्तिक द्रव्य Matter) (3) धर्म द्रव्य (गतिशील जीव एवं पुद्गल के गति माध्यम अमूर्तिक द्रव्य Media of Mation) (4) अधर्मद्रव्य (गति सहित स्थिति के निमित्त-सहायभूत अमूर्तिक द्रव्य Media of reast) (5) आकाश (समस्त द्रव्यों को अवकाश देने वाला सर्वव्यापी अमूर्तिक द्रव्य Space) (6) काल (समस्त मूर्तिक,

अमूर्तिक विश्व एवं प्रतिविश्व के परिणमन के लिए सहायकभूत द्रव्य (time) लोक (विश्व, ब्रह्माण्ड) का धनफल 343 धनराजू प्रमाण है (एक राजू का प्रमाण प्रायः असंख्यात कि.मी. है) यह लोक पुरुषाकार है अर्थात् जिस प्रकार एक व्यक्ति पैर फैलाकर कटि को दोनों हाथ से पकड़कर पैर फैलाने पर जो आकार होगा उस आकार का है। इसकी ऊँचाई 14 राजू है। नीचे 5 राजू विस्तारवाला, मध्य में 1 राजू विस्तारवाला, ब्रह्मलोक में 7 राजू विस्तार वाला एवं लोकाग्र में एक राजू विस्तार वाला है। इस लोक के मध्य में त्रसनाली है जिसकी लम्बाई कुछ कम 13 राजू तथा लम्बाई एवं चौड़ाई 1-1 राजू है। इस त्रसनाली में ही एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तिर्यच, देव, मनुष्य, नारकी रहते हैं। त्रसनाड़ी के सबसे नीचे 1 राजू प्रमाण क्षेत्र में नित्यनिगोदिया जीव रहते हैं। जो अत्यन्त सूक्ष्म और जिनकी आयु भी अत्यन्त कम है। उसके ऊपर 7 नरक हैं। नरक में कहीं अत्यन्त गर्मी है तो कहीं अत्यन्त सर्दी। वहाँ नारकियों को शारीरिक, मानसिक, क्षुधाजनित, तृषा जनित, शीत-ऊष्ण जनित अत्यन्त भयंकर पीड़ा जीवनभर होती रहती है। नीचे से 7 राजू ऊपर ब्रह्माण्ड के बीचों-बीच एवं त्रसनाली के मध्य में मध्यलोक है जिसकी लम्बाई-चौड़ाई 1-1 राजू प्रमाण है। इसमें असंख्यात द्वीप, समुद्र है। यहाँ पर एकेन्द्रिय वनस्पति से लेकर पंचेन्द्रिय मनुष्य एवं पशु-पक्षी निवास करते हैं। इसके ऊपर स्वर्ग है। स्वर्ग में देवलोक निवास करते हैं। उनका शरीर रक्त, माँस, हड्डी आदि सप्त धातु से रहित वैक्रियक, अत्यन्त सुंदर, सुगंधित, प्रकाशमान होता है। ये मति, श्रुत, अवधि ज्ञान से युक्त होते हैं। इनकी अकाल मृत्यु नहीं होती है। इनकी गति भी अत्यन्त तीव्र, अप्रतिघाती (इनकी गति में बाधा नहीं पहुँचती है अर्थात् वे पर्वत, वज्रपटल आदि को भेद करके भी गमन कर सकते हैं) ये क्षणमात्र में असंख्यात कि.मी. गमन करने में भी समर्थ होते हैं। इनके निम्नोक्त विशेष गुण होते हैं। (1) अणिमा - अणु के बराबर शरीर को करना अणिमा ऋद्धि है। (2) गरिमा- मेरू के समान अर्थात् विशालकाय शरीर को धारण करना गरिमा ऋद्धि (3) लघिमा - वायु से भी लघु अर्थात् हल्का शरीर करना लघिमा ऋद्धि है। (4) महिमा- वज्र से भी अधिक गुरुतायुक्त शरीर को बना लेना महिमा ऋद्धि है। (5) प्राप्ति- भूमि पर स्थित होकर अंगुली के अग्रभाग से सूर्य, चंद्र आदि को भी प्राप्त करना प्राप्ति ऋद्धि है। (6) प्राकाम्य- जल के समान पृथिवी पर भी उन्मज्जन, निमज्जन क्रिया

को करना और पृथ्वी के समान जल पर भी गमन करना प्राकाम्य है। (7) वशित्व- जिसके द्वारा जीव समूह वश में होते हैं उसे वशित्व ऋद्धि कहते हैं। (8) ईशत्व- पुराणों पर प्रभुत्व होना ईशत्व ऋद्धि है। (9) अप्रतिघात- जिससे शैल, शिला, वृक्षादि के मध्य होकर आकाश के समान गमन किया जाता है उसे अप्रतिघात कहते हैं। (10) अंतरध्यान- अदृश्यता को प्राप्त होना अंतरध्यान गुण है। (11) कामरूप- एकसाथ अनेक रूपों को धारण करना कामरूप है।

स्वर्ग के ऊपर ईषत् प्राग्भार पृथ्वी है। जहाँ पर सिद्ध क्षेत्र व सिद्ध शिला है। मध्यलोक के असंख्यात द्वीप-समुद्रों में से एकलाख योजन व्यास वाला जम्बूद्वीप है (1. लघुयोजन=4 कोस= 8 मील का है एवं महायोजन 2 हजार कोस= 4 हजार मील है। अकृतिम वस्तुओं का माप महायोजन में होता है। यहाँ महायोजन अभिप्रेत है।) जम्बूद्वीप को लेकर के असंख्यात द्वीप समुद्र इस मध्यलोक में है। इनमें से नंदीश्वर समुद्र के आगे नवें अरुणवर द्वीप की वाह्य जगति से संख्यात प्रमाण योजन जाकर अरुण समुद्र के प्रणधि (मध्य) भाग में 1 हजार 721 योजन=688400 मील प्रमाण ऊपर आकाश में ऊपर जाकर बलय रूप से तमस्काय (तमस्कंध संभवतः वैज्ञानिक दृष्टि से श्याम विवर Black Hole) स्थित हैं। यह तमस्कंध स्वर्ग के प्रथम चार कल्पों को (एकदेश) आच्छादित करता हुआ 5वें बाह्यकल्प में स्थित अरिष्ट नामक तलभाग में एकत्रित होता है। उस जगह इसका आकार मुर्गे की कुटी (कुड़ला के सदृश्य) होता है। अथवा जैसी भूसा भरने की बुर्जी नीचे गोल होकर क्रमशः ऊपर को फैलकर बढ़ती हुई पुनः शिखारूप ऊपर जाकर घट जाती है उसीप्रकार इस तमस्कंध की रचना है। इस अरिष्ट विमान के तल भाग से अक्षपाट के आकारवाली अथवा यम की वेदिका सदृश्य होता हुआ यह तम 8 श्रेणियों में विभक्त हो जाता है। मृदंग समआकार वाली ये तम पंक्तियाँ चारों दिशाओं में 2-2 विभक्त होकर तिरछी होती हुई लोकपर्यन्त चली गई हैं। उन अंधकार पंक्तियों के अंतराल में ईशान आदि विदिशाओं और दिशाओं में सारस्वत आदि लौकान्तिक देवगण अवस्थित रहते हैं। तमस्कंध की विस्तार परिधि मूल में संख्यात योजन, मध्य में असंख्यात योजन और इससे ऊपर असंख्यात योजन है। तमस्काय से पूर्व दिशा में संख्यात योजनाकार षट्कोणाकार को धारण करनेवाला और दक्षिण उत्तर लंबा कृष्णराजी नामका तम है। पश्चिम भाग में भी वैसा ही है। दक्षिण एवं उत्तर भाग में उतने प्रमाण आयात चतुष्कोण और पूर्व पश्चिम

आयामवाली एक-2 कृष्णराजी स्थित है। ये राजियाँ नियम से परस्पर एक-दूसरे का स्पर्श नहीं करती हैं। राजियों से संख्यात योजन पूर्व दिशायेँ अभ्यन्तर भाग में जाकर आयात चतुरस (आयताकार) और उत्तर दक्षिण दीर्घ कृष्णराशि है जो दक्षिण राजी को छूती है। पश्चिम दिशा में उत्तर राजी को छूकर एक अन्य राजी है। दक्षिण दिशा के अभ्यन्तर भाग में संख्यात योजन जाकर एक-2 कृष्णराजी है। दीर्घता की ओर से छेदे हुए यवक्षेत्र (सीलेण्डाकार) के एक भाग सदृश्य वह राजी नियम से बाह्य राजी को छूती है। दक्षिण दिशा में पूर्वापर तमस्कंध है। अरुणवर द्वीप बाह्यजगति (परिधि) तथा तमस्कंध के अंतराल (मध्यान्तर) से अभ्यन्तर राजी के तमस्कायों का अंतराल प्रमाण संख्यात गुणा है। इस परमाण से अभ्यन्तर राजी संख्यात गुणी है। अभ्यन्तर राजी से अधिक तमस्काय है। अभ्यन्तर राजी से बाह्य राजी कुछ कम हैं। बाह्य राजियों से दोनों राजियों का जो अंतराल है वह अधिक है। इसीप्रकार चारों में अल्पबहुत्व (न्यूनाधिकता) जान लेनी चाहिए।

एदम्मि तमिस्सेदे विहरंते आप-रिद्विया देवा।

दिग्मूढा वच्चंते, माहप्पेण महद्विय सुराणं ॥

(636) तिलोयपण्णति

इस अंधकार में विहार करते हुए जो अल्पद्विक देव दिग्भ्रान्त हो जाते हैं वे महद्विक देवों के महात्म्य से निकल पाते हैं। काजल सदृश यह अंधकार पुद्गल की कृष्ण वर्ण की पर्याय है। जैसे-कुलाचल एवं सूर्य-चंद्र के बिम्ब आदि पुद्गल की पर्यायें अनादि अनिधन हैं उसीप्रकार यह अंधकार का पिण्ड भी अनादि अनिधन है।

जैसे ऊष्णता शीत-स्पर्श के नाशक है परन्तु शीत पदार्थ भी ऊष्णता को समूल नाश कर सकता है। वैसे ही कतिपय अंधकार तो प्रकाशक पदार्थ से नष्ट हो जाते हैं किन्तु कुछ अंधकार ऐसे हैं जिन्हें प्रकाशक पदार्थ ठीक उसी रंग रूप में प्रकाशित तो कर देते हैं किन्तु नष्ट नहीं कर पाते। जैसे मशाल के ऊपर निकल रहे धुएँ को मशाल की ज्योति नष्ट नहीं कर पाती। अपितु उसे दिखाती ही है। उसीप्रकार अरुण समुद्र स्थित सूर्य चंद्र काली स्याही को धूल सदृश फैक रहे इस गाढ़ अंधकार का बालाग्र भी खण्डित नहीं कर सकते अपितु काले रंग की दीवाल या काले वस्त्र सदृश मात्र उसे दिखा रहे हैं।

भगवान् महावीर कहते हैं कि हे गौतम! तमस्काय वर्ण से काला, काली कांति

वाला, गंभीर (गहरा), रोमहर्षक (रोंगटे खड़े करने वाला), भीम (भयंकर) उत्प्रासजनक और परमकृष्ण कहा गया है। कोई देव भी उस तमस्काय को देखते ही सर्वप्रथम तो क्षुब्ध हो जाता है। कदाचित् कोई देव तमस्काय में अभिसमागम (प्रवेश) करे भी तो प्रवेश करने के पश्चात् वह शीघ्राति-शीघ्र त्वरित गति से झटपट उसे पार कर जाता है। (व्याख्या प्रज्ञप्ति)

तमस्काय पृथ्वी का परिणाम नहीं है, किन्तु जल का परिणाम है, जीव का भी परिणाम है और पुद्गल का भी परिणाम है।

सभी प्राण, भूत, जीव और सत्व, तमस्काय में अनेक बार अथवा अनंत बार पहले उत्पन्न हो चुके हैं; किन्तु वादर पृथ्वीकायिक रूप में या वादर अग्नि कायिक रूप में उत्पन्न नहीं हुए हैं।

तमस्काय में सूर्य चंद्रादि नहीं हैं; किन्तु उसके आस-पास में हैं; उनकी प्रभा तमस्काय में पड़ती भी है, किन्तु तमस्काय के परिणाम से परिणत हो जाने के कारण नहीं जैसी है।

तीनचुटकी बजाएँ, उतने समय में इस जम्बूद्वीप की 21 बार परिक्रमा करके आ जायें इतनी शीघ्र दिव्यगति से कोई देव लगातार एक दिन, दो दिन यावत् अर्धमास तक चले, तब कहीं वह देव किसी कृष्णराजी को पार कर पाता है और किसी कृष्ण राजी को पार नहीं कर पाता है। हे गौतम! कृष्णराजियाँ इतनी बड़ी हैं।

आधुनिक वैज्ञानिक भी तमस्कंध के बारे में अभी शोधरत हैं परन्तु वे अभी ठोस निर्णय पर नहीं पहुँच पाये हैं। इसकी संभावना का अनुमान सर्वप्रथम 1907 में जर्मन के खगोलशास्त्री कार्लस्वार्ज चाइल्ड ने व्यक्त किया था। उन्होंने कहा कि इनका जन्म ऐसे सितारों के समाप्त होने से होता है जो सूर्य से भी बड़े होते हैं। मान लो सूर्य से भी एक बड़ा तारा है। इसके केन्द्र का तापमान बहुत अधिक होता है। जिसके कारण तारे में उपस्थित पदार्थ फैलने की कोशिश करता है। लेकिन इसका गुरुत्व बल एक निश्चित सीमा से अधिक नहीं फैलने देता है। तापमान के कारण फैलाव और गुरुत्व बल के द्वारा होने वाले सिकुड़ने के संतुलन में ही तारे का आकार निश्चित होता है। जब किसी स्थिति में तारे के अंदर का ईंधन कम होना शुरू हो जाये तो इसके अंदर का तापमान कम होने लगेगा। परिणाम यह होगा कि प्रसार या फैलाव बल की अपेक्षा गुरुत्व बल अधिक हो जायेगा और तारा सिकुड़ना शुरू कर देगा।

सिकुड़ने की इस क्रिया में तारे के पदार्थ के परमाणु इलेक्ट्रॉन, प्रोटॉन और

न्यूट्रॉनों में टूट जाते हैं। इलेक्ट्रानों पर ऋण आवेश होता है। ऋण आवेशों के बीच में प्रतिकर्षण (Repulsion) होता है। यह प्रतिकर्षण बल गुरुत्व बल के विपरीत क्रिया करता है और परिणाम यह होता है कि तारों का और अधिक सिकुड़ना रुक जाता है। इस स्थिति में बने तारों को व्हाइट ड्वार्क (White Dwarf) कहते हैं। व्हाइट ड्वार्क का आकार मूल तारों का लगभग 100वाँ हिस्सा रह जाता है। आकार के कम होने से गुरुत्व बल लगभग 1000 गुना अधिक होता जाता है।

अब यदि किसी कारण से गुरुत्वकबल इलेक्ट्रॉन प्रतिकर्षण बल से अधिक हो जाता है, तो तारे का आकार और भी कम होने लगता है। इसका परिणाम यह होता है कि तारे के अंदर इलेक्ट्रॉन और प्रोटोन मिलकर न्यूट्रान में बदलने लगते हैं। इस प्रकार से बने तारे को न्यूट्रान स्टार कहते हैं। इसका आकार ड्वार्क स्टार की तुलना में 500वाँ हिस्सा ही रह जाता है। अब इसका गुरुत्वबल मूल बल से दस अरब गुना अधिक हो जाता है।

न्यूट्रान स्टार से प्रकाश निकलने के कारण इसकी ऊर्जा कम हो जाती है, जिससे इसका आकार और भी छोटा होता जाता है और गुरुत्व बल बढ़ता जाता है। एक स्थिति ऐसी आ जाती है, जबकि इससे प्रकाश निकलना बंद हो जाता है। यही ब्लैक होल कहलाता है।

ब्लैक होल का घनत्व समझने के लिए एक काल्पनिक, आनुमानिक उदाहरण यह है कि यदि हमारी पृथ्वी ब्लैक होल बन जाये तो यह एक चम्मच के बराबर आयतन में आ जायेगी। इस घनत्व के कारण ब्लैक होल की गुरुत्वाकर्षण शक्ति इतनी अधिक है कि प्रकाश भी इसके पास से न गुजर पायेगा। प्रकाश को भी वह खींचकर निगल लेगा एवं वापिस नहीं आने देगा। जिसके कारण भी ब्लैक होल अंधकारमय काला है। अंतरिक्ष में ब्लैक होल अत्यधिक शक्तिशाली शून्य या निर्वात क्षेत्र है वह अपनी ओर आने वाली किसी भी वस्तु को आकर्षण करके स्वयं में समावेश कर लेता है। ये ब्लैक होल स्थिर नहीं हैं घूमते रहते हैं।

स्टीफन हॉकिंगने एक वैज्ञानिक के रूप में जो योगदान किया है, उसकी तुलना आइन्स्टीन एवं न्यूटन सरीखे महान् वैज्ञानिकों से की जाती है। उन्होंने आइन्स्टीन के सामान्य सापेक्षतावाद के सिद्धान्त को क्वांटमसिद्धान्त से जोड़कर देखा और पाया कि ब्लैकहोल्स (कृष्ण विवर) पूर्णतः काले नहीं हैं तथा उनमें से भी लगातार विकिरण होता रहता है। जो धीरे-2 वाष्पित होता रहता है। ऐसे विकिरणों को

आज 'हॉकिंग्स रेडिएशन' की संज्ञा दी गई है। उनके अनुसार वाष्पित होते ब्लैक होल्स में अंत में किसी दिन विस्फोट हो सकता है तथा ये गायब हो सकते हैं।

हॉकिंग ने यह भी प्रतिपादित किया है कि किसी काल्पनिक समय में ब्रह्माण्ड की कोई सीमा या छोर नहीं है।

उपर्युक्त जैन सिद्धान्त एवं आधुनिक विज्ञान में वर्णित तमस्कंध एवं श्याम विवर के बारे में यत्किंचित् वर्णन किया गया। दोनों के वर्णन में बहुत कुछ समानतायें परिलक्षित होती हैं। जैन सिद्धान्त में यह वर्णन पाया जाता है कि तम स्कंध में विहार करते हुए अल्पनिर्द्धक देव दिग्भ्रान्त हो जाते हैं वे महर्द्धक देवों के महात्म्य से निकल पाते हैं। यह भी वर्णन पाया जाता है कि कोई भी देव उस तमस्काय को देखते ही सर्वप्रथम तो क्षुब्ध हो जाता है कदाचित् कोई देव तमस्काय में प्रवेश करे भी तो प्रवेश के पश्चात् शीघ्रान्ति-शीघ्र त्वरित गति से उसे पार कर जाता है।

ऊपर वर्णन किया गया है कि देव में कितनी शक्ति, गति, उपलब्धियाँ हैं। यदि ऐसे देव भी ऐसे तमस्काय में दिग्भ्रमित, पथभ्रष्ट हो जाते हैं तो उस तमस्काय की शक्ति, भयंकरता, दुर्लभ्यता सहज ही बोधगम्य है। देव इस प्रकरण में एक उदाहरण हैं। देव को एक शक्ति और गति की इकाई के रूप में हम मान सकते हैं जिस प्रकार कि अश्वशक्ति आदि। यदि ऐसे देव की भी शक्ति, गति कुंठित हो जाती है तो अन्य सामान्य जीव या आकाशीय पिण्ड की क्या दशा एवं दिशा हो सकती है? यह भी सहज ही बोधगम्य है।

विज्ञान में जिसप्रकार प्रकाश की गति को गति की सबसे बड़ी एवं शक्तिशाली इकाई ली गई है उसीप्रकार जैन सिद्धान्त में देव की गति को इकाई रूप में स्वीकार किया गया है। यह भी संभव हो सकता है कि देव के उदाहरण के माध्यम से जैन आध्यात्मिक विज्ञानिकों ने अन्य समस्त दिव्य आकाशीय पिण्ड (जीव, पुद्गल) को ग्रहण कर लिया हो। स्टीफन हॉकिंग के अनुसार कृष्ण विवर पूर्णतः काले नहीं हैं तथा उनमें से लगातार विकिरण होता रहता है। जैन सिद्धान्त के अनुसार ब्रह्माण्ड के हर पिण्डों से सतत परमाणु का गलन (क्षरण, विकिरण) होता रहता है। ऊपर ये वर्णन किया गया है कि महर्द्धक देवों की सहायता से सामान्य दिग्भ्रमित देव श्याम विवर (तमस्कंध) से निकल जाते हैं। इसमें भी कितनी साम्यता परिलक्षित होती है।

मैंने जो इस शोधपूर्ण विषय का प्रतिपादन किया है इसका उद्देश्य धर्म की सार्वभौमिकता / श्रेष्ठता / व्यापकता सिद्ध करने के साथ-2 विज्ञान की सत्यग्राहिता / प्रगतिशीलता / खोजदृष्टि का भी दिग्दर्शन कराना है। इसीलिए

मेरे मतानुसार "Science is part of religion but religion is an absolute science." "विज्ञान आंशिक धर्म है परंतु धर्म पूर्ण विज्ञान है" इसके साथ-2 वैज्ञानिकों को मार्गदर्शन देना एवं उनकी खोज के लिए समर्थन, प्रोत्साहन देना भी है। और मेरा ये भी उद्देश्य है कि 'वैज्ञानिक लोग शोध करने के बाद धार्मिक लोग कहने लगते हैं कि ये विषय तो धर्म में पहले से ही था। परन्तु मैं वैज्ञानिकों के शोध के पहले ही उसके आगे का विषय भी उनके सामने प्रस्तुत करना चाहता हूँ जिससे यह सिद्ध होगा कि विज्ञान सत्य के रास्ते पर होते हुए भी पूर्ण सत्य तक नहीं पहुँचा है। लेकिन आध्यात्मिक विज्ञान पूर्ण सत्य तक पहले से ही पहुँच गया था। इसी प्रकार अनेक प्रयोग, वर्णन, शोध-बोध-खोज मैंने अपनी 'विश्वविज्ञान रहस्य, स्वतंत्रताके सूत्र, विश्व द्रव्य विज्ञान, क्रांति के अग्रदूत, अति मानवीय शक्ति, सत्य साम्य सुखामृतम्, कर्म का दार्शनिक वैज्ञानिक विश्लेषण, धर्म दर्शन एवं विज्ञान, धर्म दर्शन विज्ञान प्रवेशिका I II III भाग, धर्म एवं स्वास्थ्य विज्ञान, आदर्श विचार विहार आहार, सर्वोदय शिक्षा मनोविज्ञान इत्यादि कृतियों में किया है।'

इस कृति का शुभारंभ मैंने 1989 बड़ौत (यू.पी.) में किया था। परन्तु साहित्य लेखन, शिविर, संगोष्ठी आदि की व्यस्तता के कारण तथा इस संबंधी वैज्ञानिक साहित्य, लेख आदि की कमी, अनुपलब्धता के कारण इसका कार्य मध्य में रुक गया था। अभी इसकी अधिक माँग के कारण तथा प्रो. सुशीलचंद्र जैन (धर्म दर्शन विज्ञान शोध संस्थान के सदस्य) के विशेष अनुरोध तथा उनके द्वारा प्रेषित साहित्य एवं लेख के कारण यह कार्य अभी पूर्ण हो पाया। विषय की गूढ़ता, सूक्ष्मता, नवीनता के कारण उसे समझाने के लिए अनेक विषयों को विस्तार से तथा सन्दर्भानुसार अनेक प्रकरण में पुनरावृत्ति की गई है। इस कृति के सहायक तथा ज्ञानदानी (द्रव्यदाता) प्रो. सुशीलचंद्र जैन (बड़ौत) तथा लेखन कार्य में सहायक संज्ञा, पारसकुमार जैन (खरका) को मेरा शुभाशीर्वाद। मैं ऐसे शोधपूर्ण लेख एवं साहित्य के माध्यम से धर्म की शाश्वतिकता / सार्वभौमिकता / सर्वउपयोगिता सिद्ध करके देश-विदेश में आधुनिक वैज्ञानिक प्रणाली से विश्व में धर्म का प्रचार-प्रसार करके विश्व को सुख-शांतिमय बनाना चाहता हूँ। मेरे उद्देश्यों से विश्व मानव लाभान्वित हो तथा सत्य समता शांति, समृद्धि को प्राप्त करे ऐसी उदात्त, महती भावनाओं / कामनाओं के साथ-

आचार्य कनकनंदी, करावली- उदयपुर (राज.)

6-2-2002

अध्याय-1

ब्रह्माण्ड (विश्व, लोक) का वर्णन

सर्वज्ञ के द्वारा अप्रतिहत अनंत ज्ञान दर्शन के द्वारा जो देखा जाता है उसे लोक कहते हैं। इस परिभाषा की अपेक्षा अलोक को भी लोक संज्ञा प्राप्त होती है किन्तु रूढ़ि विशेष के कारण, यहाँ धर्मादि पाँचों द्रव्य जिस आकाश प्रदेश में रहते हैं उसे लोक कहते हैं। इस लोक का अवस्थान कहाँ है, इसका वर्णन पूर्वाचार्यों ने सर्वज्ञ के उपदेश के अनुसार किया है। यथा-

(विश्व प्रतिविश्व का केन्द्र)

सव्वागासणमंतं तस्स य बहुमज्झादिसभागम्हि ।
लोगोसंख्रपदेशो जगसेद्धिघणप्पमाणो हु ॥ (त्रि.सा.)

सर्व आकाश अनंत प्रदेशी है। उस अनंत प्रदेशी सर्वाकाश के ठीक मध्यभाग में अतिशय रचनारूप जो असंख्यात प्रदेश है वही आकाश के खण्ड स्वरूप हैं। अथवा जो गोस्तनाकार आठ प्रदेश आकाश के मध्य में हैं वे ही आठ प्रदेश जिसके मध्य में हैं ऐसे आकाश के खण्ड को लोक कहते हैं। लोक असंख्यात प्रदेशी है और वह निश्चय से जगच्छ्रेणी के घन प्रमाण है। लोक के असंख्यात प्रदेश समसंख्या स्वरूप हैं। अतः एक प्रदेश मध्य न होकर दो प्रदेशों का मध्य बनता है और लोक घनस्वरूप है अतः दो प्रदेशों का घन रूप क्षेत्र 8 प्रदेश प्रमाण है।

लोकाकाश अलोकाकाश के मध्यभाग में स्थित है। अतः लोकाकाश के मध्य 8 प्रदेश हैं। वे ही 8 प्रदेश लोकाकाश के भी मध्य प्रदेश बन जाते हैं। सुदर्शन मेरु के नीचे ठीक मध्य में ये 8 प्रदेश स्थित हैं अतः सुमेरु का मध्य भी इन 8 प्रदेशों पर ही होता है। इसीलिए अलोकाकाश का, लोकाकाश का और सुमेरु का तीन लोक का, तिर्यक् लोक का, तथा जम्बूद्वीप का मध्यप्रदेश वही 8 प्रदेश हैं। इन सब का मध्यप्रदेश एक ही है।

क्षेत्र परिवर्तन का प्रारम्भ गोस्तनाकार इन 8 मध्यप्रदेशों से होता है। जघन्य अवगाहना वाला सूक्ष्म निगोदिया जीव अपने 8 मध्य के प्रदेशों को इन ही मध्यप्रदेशों पर स्थापित कर जन्म लेता है। जितने आकाश प्रदेश को वह रोकता है, उतने ही बार अपने 8 मध्यप्रदेश को इन पर स्थापित कर जन्म लेता है।

इसीलिए 8 मध्यप्रदेश क्षेत्र परिवर्तन का प्रारम्भिक स्थान है। जघन्य अवगाहना वाला सूक्ष्म निगोदिया जब अपने ही मध्य प्रदेशों में स्थापित कर जन्म लेता है तब 8 मध्यप्रदेश जीव क शरीर के भी 8 मध्यप्रदेश होते हैं।

इन 8 मध्यप्रदेशों के अवलम्बन से लोकाकाश की 4 दिशाओं का व्यवहार होता है अर्थात् 8 प्रदेश से नीचे अधोलोक का प्रारम्भ 8 प्रदेश के ऊपर एवं सुमेरु के चूलिका पर्यन्त मध्यलोक का व्यवहार है एवं चूलिका के एक बालाग्र के ऊपर से ऊर्ध्वलोक का प्रारम्भ होता है। इसीलिये 8 मध्यप्रदेश लोकमाप का एक केन्द्र स्थल है।

अर्हन्त केवली 13वें गुणस्थान के अंत में जब केवली समुद्घात करते हैं तब लोक पूरण अवस्था में ही 8 मध्य के प्रदेशों पर केवली के 8 मध्यप्रदेश स्थित होकर लोकाकाश को व्याप्त करते हैं इसीलिए केवलज्ञान की अपेक्षा भी ये 8 मध्य प्रदेश हैं। यह लोक केवल माया स्वरूप केवल ब्रह्मस्वरूप अथवा शून्य रूप नहीं है। इस लोक में सत् स्वरूप जीव-अजीव रूप द्रव्य पूर्ण रूप से व्याप्त हैं। यथा

(विश्व सीमित, प्रतिविश्व असीमित - अनन्त)

धम्माधम्मागासा गदिरागदि जीव पोग्गलाणं च।
जावत्तावल्लोगो आयासमदो परमणंतं ॥

(त्रिलोकसार) (5)

जितने आकाश को धर्मद्रव्य, अधर्म द्रव्य आकाश द्रव्य और गति अगति करने वाले, जीव एवं पुद्गल द्रव्य तथा शब्द के द्वारा ग्रहित कालद्रव्य अभिव्याप्त करते हैं उतने आकाश को लोक कहते हैं। इसके आगे अलोकाकाश है। अलोकाकाश अनंत है।

धम्माधम्मा कालो पुग्गलजीवाय संति जावदिये।
आयासे सो लोगो तत्तो परदो अलोगुत्तो ॥

(द्रव्य सं.) (20)

जहाँ पुण्य-पाप का फल देखा जाता है उसे लोक कहते हैं। अथवा जहाँ पुण्य-पाप कर्मों का फल सुख-दुःख रूप लक्षण में देखा जाता है उसे लोक कहते हैं। अथवा जो देखा जाता है उसे लोक कहते हैं। अथवा जहाँ अर्थ देखा जाता है,

उपलब्ध होता है उसे लोक कहते हैं। अप्रतिहत केवल दर्शनके माध्यम से सर्वज्ञ के द्वारा जो देखा जाता है उसे लोक कहते हैं। इसी प्रकार अकलंकदेव ने लोक की परिभाषा कही है- लोक के आकाश को लोकाकाश कहते हैं। जैसे पृथ्वा पृष्ठ पर जहाँ जल रहता है, उसे जलाशय कहते हैं। उसी प्रकार आकाश के जिस प्रोक्ष पर लोक रहता है उसे लोकाकाश कहते हैं। इसप्रकार लोकाकाश और अलोकाकाश के भेद है। जैन दृष्टिकोण के अनुसार लोक अर्थात् विश्व के तीन भेद हैं- अधोलोक, मध्यलोक, ऊर्ध्वलोक। प्रथम लोक में नारकी रहते हैं, द्वितीय लोक में मनुष्य एवं तिर्यन्च रहते हैं एवं तृतीय लोक में देवलोग रहते हैं। विश्व को घेरे हुए एवं परस्पर एक दूसरों को वेष्टित करते हुए तीन वात वलय हैं। प्रलोदधि वातवलय को वेष्टित करते हुए घनवातवलय तथा घनवातवलय को तनुवात वलय वेष्टित किये हैं। इसप्रकार तीन वातावलय से वेष्टित जो अदृश्य (अमूर्तिक) आकाश है, उसको लोकाकाश कहते हैं जो कि अन्य द्रव्यों को अवगाहन देता है। इस लोकाकाश में जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, काल से पाँच द्रव्य रहते हैं। इस लोकाकाश के बाहर अलोकाकाश है जो कि शाश्वत अनंत है, अमूर्तिक है, अन्य द्रव्य से रहित है, क्रियाहीन है एवं सर्वज्ञ के द्वारा ज्ञात है। अलोकाकाश में केवल आकाश ही है, उसमें जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, काल नहीं है। इस अलोकाकाश की सीमा प्रत्येक दिशा में अनंतानंत है। इस अनंतानंत आकाश के बहुमध्य भाग में जो सीमित असंख्यात प्रदेशी लोक है उसका आकार भी निश्चित पुब्यवस्थित और अपरिवर्तनशील है। इस लोक का माप निम्न इसप्रकार है।

विश्व का प्रमाण

उदयदलं आयामं वासं पुव्वारवेण भूमिमुहे।
सत्तेकपंचएक्क य रज्जू मज्झमिह हाणिचयं ॥

(त्रिलोकसार)

लोक की ऊँचाई (उदय) 14 राजू प्रमाण है इसका आधा $\frac{14}{2} = 7$ राजू परिमाण दक्षिणोत्तर आयाम (चौड़ाई) है। दक्षिणोत्तर दिशा में लोक के अधोभाग से ऊपर 14 राजू ऊँचाई पर्यन्त लोक सर्वत्र 7 राजू चौड़ा है। कहीं भी हीनाधिकता नहीं है। पूर्व-पश्चिम दिशाओं का व्यास अधो एवं मध्य लोक में क्रम से भूमि 7 राजू, मुख 1 राजू तथा ऊर्ध्वलोक के मध्य में भूमि 5 राजू और मुख अधर

एवं शिखर पर 1 राजू प्रमाण है। इन दोनों मुख और भूमि के बीच में हानि और वृद्धि वय को साधना चाहिए। आदि परिमाण को नाम भूमि, अंत परिमाण का नाम मुख, घटने का नाम हानि और क्रम से बढ़ने का नाम चय है।

संपूर्ण लोक तीन वातवलय सहित है। लोक में 8 भूमि भी हैं। वातवलय से रूद्ध क्षेत्र के घनफल एवं आठ भूमियों के रूद्ध घनफल का योग संपूर्ण लोक में से घटाने पर अव शिष्ट शुद्ध आकाश का परिमाण होता है।

त्रसनाडी

343 धन राजू परिमाण विश्व में सर्वत्र जीवराशि संपूर्ण रूप ठसाठस भरे होने पर भी जो उच्चस्तरीय द्वीन्द्रियादि त्रस जीव हैं वे सर्वत्र नहीं पाये जाते हैं। त्रसजीव लोक के निश्चित अंश में पाये जाते हैं। जिस अंश में त्रस जीव पाये जाते हैं उस लोक का अंश ऊर्ध्वाकार नाडी के समान है। इसीलिए इसको त्रसनाडी कहते हैं। यह त्रसनाडी लोकाकाश के बहुमध्य प्रदेश में अर्थात् बीचोबीच है।

लोय बहुमज्जदेसे रुक्खे सारव्व रज्जुपदरजुदा।

चोद्दसरज्जुचुंगा तसणाली होदि गुणणामा ॥

(त्रिलोकसार) (143)

लोकाकाश के बहुमध्य प्रदेशों में (बीच में) वृक्ष के मध्य में रहने वाले सार भाग के सदृश तथा एक राजू प्रतर से सहित 14 राजू ऊँची और सार्थक नाम वाली त्रसनाली है।

लोक के बहुमध्य प्रदेशों में त्रसनाली उसी प्रकार विद्यमान है जिस प्रकार वृक्ष के (छाल आदि तो ऊपरी भाग है) मध्य में सार्वभूत लकड़ी विद्यमान रहती है।

यह त्रसनाली एक राजू लम्बी, 1 राजू चौड़ी और 14 राजू ऊँची है। राजू, कोटि और 14 राजू ऊँचाई का परस्पर गुणा करने से (1x1x14) त्रसनाली का घनफल 14 घन राजू परिमाण प्राप्त होता है। लोक का परिमाण 343 घनराजू है। जिसमें मात्र 14 घन राजू परिमाण में त्रसनाली है अर्थात् त्रसजीव पाये जाते हैं। शेष 329 घनराजू में मात्र स्थावर जीव ही प्राप्त होते हैं त्रस नहीं। उपपाद, मारणान्तिक एवं केवली समुद्घात वाले त्रस जीवों के आत्मप्रदेशों का सत्व अवश्य 329 घन राजू में पाया जाता है किन्तु उसकी यहाँ विवक्षा नहीं है। सामान्यतः स्थूल दृष्टि से देखने पर त्रसनाली की ऊँचाई 14 राजू परिमाण है किन्तु सूक्ष्मदृष्टि से देखने पर कुछ कम अर्थात् 13 राजू परिमाण है। जैसाकि

चिलोक प्रज्ञप्ति में वर्णन किया है।

लोयबहुमज्जदेसे तरुम्मि सारं व रज्जुपदर जुदा।

तेरसरज्जुच्छेदा किंचूणा होदि तसणाली ॥

(तिलोयपण्णति) (द्वितीय अधिकार-6)

जिस प्रकार वृक्ष के ठीक मध्यभाग में सार हुआ करता है उसी प्रकार लोक के बहुमध्यभाग अर्थात् बीच में 1 राजू लंबी, चौड़ी और कुछ कम 13 राजू ऊँची त्रसनाली (त्रस जीवों का निवास क्षेत्र) है।

ऊणपमाणं दंडा कोडितियं एक्कवीस लक्खाणं।

वासट्ठं च सहस्सा दुसया इगिदाल दुति भागा ॥

(ति.प.) (7)

त्रसनाली 13 राजू से $32162241 \frac{2}{3}$ धनुष कम 13 राजू परिमाण है। इसका विस्तृत वर्णन इस प्रकार है।

सातवें नरक के नीचे 1 राजू परिमाण क्षेत्र में निगोदिया जीव ही रहते हैं। यहाँ अन्य कोई त्रस जीव नहीं रहते हैं। निगोदिया जीव एकेन्द्रिय साधारण घनस्पतिकाय जीव होने के कारण सर्व स्थावर जीव हैं इसीलिए निगोद का 1 राजू कम करने से त्रसनाली 13 राजू हुआ। पुनः $32162241 \frac{2}{3}$ धनुष कम का विवरण निम्न प्रकार है।

सातवीं महातमप्रभा नामकी पृथ्वी 8 हजार योजन अर्थात् (32000000 मील) मोटी है। उसके ठीक मध्य में नारकियों के श्रेणीबद्ध बिल बने हुए हैं। उन बिलों की मोटाई $\frac{4}{3}$ योजन अर्थात् (16 हजार मील) = $5333 \frac{1}{3}$ मील है।

इस मोटाई को समच्छेद करके पृथ्वी की मोटाई से घटाने पर $\frac{8000}{1} - \frac{4}{3} = \frac{24000-4}{3} = \frac{23996}{3}$ = योजन बचता है। इसका आधा $\frac{23996}{3} \times \frac{1}{2} = \frac{11998}{3}$ योजन अर्थात् $3999 \frac{1}{3}$ योजन या $31994666 \frac{2}{3}$ धनुष होते हैं। यह नीचे का त्रस जीव से रहित स्थान का माप है। वर्तमान ऊर्ध्व लोक में जितने अंश में त्रसजीव नहीं रहते हैं उसका परिमाण निम्न प्रकार है।

सर्वार्थसिद्ध विमान के ऊपर 12 योजन पर ईशत्राग्भार नामकी 8वीं पृथ्वी है। जो 8 योजन मोटी है। सर्वार्थसिद्धि के बाद त्रस जीव का अभाव है इसलिए सर्वार्थ सिद्धि से 12 योजन (ईषत् प्रागभार पृथ्वी का अंतर है) उसमें भी त्रसजीव नहीं

रहते हैं। लोक के शिखर पर तीन वातवलय में भी त्रसजीव नहीं रहते हैं। इसलिए ऊर्ध्वलोक में त्रसरहित स्थान = 12 योजन + 8 योजन + 2 कोश + 1 कोश + कुछ कम एक कोश। एक कोश में 2 हजार धनुष होते हैं इसलिए त्रसरहित स्थान का परिमाण 96 हजार + 64 हजार + 4 हजार + 2 हजार + 1 हजार + 1575 धनुष = 321.622 41 $\frac{1}{2}$ धनुष हुआ। इस प्रकार नीचे एवं ऊपर त्रसरहित स्थान = 1 राजू 321.622 41 $\frac{2}{3}$ धनुष = 13 राजू 321.622 41 $\frac{2}{3}$ धनुष हुआ। त्रसजीव का निश्चित स्थान आचार्यों ने निम्न प्रकार कहा है।-

एइंदिएहिं भारिदो पंच पयारेहिं सव्वदो लोओ।

तस णाडीय वि तसा ण बाहिरा होति सव्वत्थ ॥

पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा वनस्पति ऐसे पाँच प्रकार के एकेन्द्रिय स्थावर जीवों के द्वारा संपूर्ण 343 धन लोक प्रमाण वाला विश्व भरा हुआ है किन्तु त्रसजीव अर्थात् द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय जीव केवल त्रसनाली में ही रहते हैं। इस गाथा का पाठ्यान्तर कुछ शास्त्र में “णवाहिरा होति सवत्थ” के स्थान में “ण वादरा होति सवत्थ” भी मिलता है। “ण वादरा होति सवत्थ” इति पाठे सर्वत्र लोके वादराः स्थूलाः पृथ्वीकायिकदय स्त्रसाश्च न संति। आधारो थूलाओ (गो.जी.) इति च वचनात्” वादर जीव अर्थात् पृथ्वीकाय आदि एकेन्द्रिय जीव तथा त्रसजीव लोक में नहीं रहते हैं क्योंकि वादर जीव को आधार चाहिए। बिना आधार के एकेन्द्रिय स्थूल जीव भी नहीं रहते हैं इसीलिए वादर एकेन्द्रिय जीव त्रसनाड़ी में ही रहते हैं किन्तु उपपाद एवं मारणान्तिक समुद्घात की अपेक्षा त्रसजीव त्रसनाड़ी को छोड़कर अन्यत्र भी पाये जाते हैं।

तीन लोक विभाग

त्रसनाली मुख्य रूप से तीन भाग में विभाजित होती हैं। इन तीन लोक विभागों में प्रायः भिन्न-2 गति से जीव रहते हैं। ऊर्ध्वलोक में देव, मध्यलोक में मनुष्य, तिर्यञ्च एवं अधोलोक में नारकी रहते हैं।

मेरुरस हिट्ठ-भाए सत्त वि रज्जु हवेई अहल्लोओ।

उड्ढम्मि उड्ढलोओ मेरु समो मज्झिमो लोओ ॥

मेरु शब्द का अर्थ माप करने वाला होता है जो तीनों लोकों का माप करता है

उसे मेरु कहते हैं। “लोकमय मिनातीति मेरुरुति” तीन लोक का माप करने के कारण इस पर्वत का नाम मेरु है। मेरु का संपूर्ण माप 100040 योजन अर्थात् 400160000 मीटर है। सुमेरु का मूल अर्थात् भूमि के नीचे 1000 यो. 4000000 मीटर है। भूमि से चूलिका पर्यन्त ऊँचाई 99000 यो. अर्थात् 376000000 मीटर है। चूलिका 40 योजन अर्थात् 160000 मीटर है। यह मेरु रत्नप्रभा नामकी प्रथम पृथ्वी पर स्थित है। रत्नप्रभा नामकी पृथ्वी मध्यलोक के अंतर्गत है इसलिए मध्यलोक का परिमाण मेरु के परिमाण (40016000 मील) के समान है। इस रत्नप्रभा नामकी पृथ्वी के नीचे शर्करा, प्रभादि छः पृथ्वियाँ हैं। सातवी पृथ्वी के नीचे 1 राजू में निगोद स्थान है। मेरु के मूल से नीचे का 7 राजू परिमाण अधोलोक है। सुमेरु से 1 बाल परिमाण ऊपर से अर्थात् सौधर्म स्वर्ग के ऋजु विमान के तल से लेकर लोक के शिखर पर्यन्त 7 राजू क्षेत्र ऊर्ध्वलोक है।

सामान्य दृष्टि से जब हम लोक के ऊर्ध्वलोक एवं अधोलोक 2 भेद करते हैं तो उस समय मध्यलोक की ऊँचाई ऊर्ध्व लोक में सम्मिलित होती है क्योंकि 7 राजू की तुलना में 100040 योजन ऐसे ही हैं जैसे पर्वत की तुलना में राई। यथार्थ में ऊर्ध्व लोक की ऊँचाई (7 राजू 100040 योजन) प्रमाण है।

(1) अधोलोक का वर्णन

मुखदले सत्तमही उवरीदो रयणसक्करावाल्।

पंकाधूमतमोमहतमप्पहा रज्जुअंतरिया ॥

(त्रिलोकसार) (144)

लोक का आकार डेढ़ मृदंग के सदृश है। जिस में अर्धमृदंगाकार में अधोलोक है। ऊपर एक मृदंगाकार में ऊर्ध्वलोक है। इसी अर्धमृदंगाकार में ही (1) रत्नप्रभा (2) शर्कराप्रभा (3) बालुकाप्रभा (4) पंकप्रभा (5) धूमप्रभा (6) तमप्रभा (7) महातमप्रभा ये 7 पृथ्वियाँ हैं। ये 7 पृथ्वियाँ सार्थक नामवाली हैं क्योंकि रत्नप्रभा रत्न की प्रभा के सदृश, शर्कराप्रभा मिश्री की प्रभा के सदृश, बालुकाप्रभा रेत की प्रभा के सदृश, पंकप्रभा कीचड़ की प्रभा के सदृश, धूमप्रभा धुआँ की प्रभा के सदृश, तमप्रभा अंधकार की प्रभा के सदृश, महातमप्रभा महाअंधकार की प्रभा के सदृश है। ये सातों ही पृथ्वियाँ एक-एक राजू के अंतर पर स्थित हैं। मध्यलोक

और प्रथम पृथ्वी के बीच में कोई अंतर नहीं है अर्थात् प्रथम पृथ्वी का उपरिम भाग मध्यलोक है। हम लोग रत्नप्रभा या प्रथम पृथ्वी के ऊपर वास कर रहे हैं, अर्थात् मध्यलोक के तल भाग से स्पर्श करती हुए प्रथम पृथ्वी के ऊपर वास कर रहे हैं, क्योंकि मध्यलोक के तल भाग से स्पर्श करती हुई प्रथम पृथ्वी है। प्रथम पृथ्वी से एक राजू के अंतर पर दूसरी पृथ्वी है। इसी प्रकार तीसरी आदि पृथ्वियाँ एक-एक राजू के अंतराल से हैं।

रत्नप्रभा का धर्मा, शर्कराप्रभा का वंशा, बालुका प्रभा का मेघा, पंकप्रभा का अञ्जना, धूमप्रभा का अरिष्ठा, तमप्रभा का मधवी और महातम प्रभा का माधवी, ऐसे सात अनादि रुढ़ पर्यायान्तर नाम हैं।

रत्नप्रभा नाम की प्रथम पृथ्वी के तीन भाग हैं— (1) खर भाग, (2) पंक भाग (3) अब्बहुल भाग। इनमें खर भाग का प्रथम भाग 16000 योजन= 64000000 मील मोटा है। द्वितीय पंक भाग 84,000 योजन=336000000 मील मोटा है। तृतीय अब्बहुल भाग 80,000 योजन = 320000000 मील मोटा है।

प्रथम रत्नप्रभा पृथ्वी के खर भाग में 16 पृथ्वियाँ हैं। इन पृथ्वियों की मोटाई एक-एक हजार योजन= 4000000 मील प्रमाण है। इन सोलह पृथ्वियों के बीच में किसी प्रकार का अंतराल नहीं है। इनके नाम यथाक्रम से 1. चित्रा, 2. वज्रा, 3. वैडूर्या, 4. लोहिता, 5. मसारकल्पा, 6. गोमेदा, 7. प्रवाला, 8. ज्योतिरसा, 9. अंजना, 10. अञ्जनमूलिका, 11. अंका, 12. स्फटिका, 13. चंदना, 14. सर्वार्थका, 15. बकुला, 16. शैला हैं। ये सोलह पृथ्वियाँ लोक के अंत तक फैली हैं। अर्थात् इनकी लंबाई, चौड़ाई लोक के समान 1-1 राजू है।

यह चित्रा पृथ्वी सार्थक नाम वाली है। क्योंकि यहाँ पर अनेक प्रकार के वर्णों से युक्त महीतल, शिलातल, उपपाद, बालू, शक्कर, शीशा, चांदी, सुवर्ण है। इनकी उत्पत्ति स्थान, व्रज तथा अयस्क (लोहा), ताँबा, त्रपु (रांगा), शस्यक (मणि विशेष), मणिशिला हिंगुल (सिगरफ), हरताल, अंजन, प्रवाल (मूंगा), गोमेदक (मणि विशेष), रुचक, कदम्ब (धातु विशेष), प्रतर (धातु विशेष), ताम्र बालुका (लाल रेत), स्फटिक मणि, जलकांत मणि, सूर्यकांत मणि, वैडूर्यमणि, गेरु, चंद्राशय, लोहितांग (लोहिताक्ष), बबय (अभ्रक), बागमोच और सारंग इत्यादि वर्ण वाली धातुओं के रहने के कारण इस पृथ्वी का नाम चित्रा पृथ्वी है।

रत्नप्रभा में अनेक प्रकार के रत्न पाये जाते हैं इसीलिये इसका सार्थक नाम रत्नप्रभा है। रत्नप्रभा पृथ्वी के बाद शर्करादि अधःस्तन दृढ पृथ्वियाँ हैं।

1. द्वितीय शर्करा पृथ्वी की मोटाई 32000 योजन अर्थात् 128000000 मील है।
 2. बालु का पृथ्वी की मोटाई 28000 योजन अर्थात् 112000000 मील है।
 3. पंकप्रभा पृथ्वी की मोटाई 24000 योजन अर्थात् 96000000 मील है।
 4. धूमप्रभा पृथ्वी की मोटाई 20000 योजन अर्थात् 80000000 मील है।
 5. तमप्रभा पृथ्वी की मोटाई 16000 योजन अर्थात् 64000000 मील है।
 6. महातमप्रभा पृथ्वी की मोटाई 8000 योजन अर्थात् 32,000000 मील है।
- कुछ आचार्यों के मत में, छह पृथ्वियों की मोटाई निम्न प्रकार है।

1. शर्कराप्रभा की मोटाई 132000 योजन = 528000000 मील है।
2. बालुकाप्रभा की मोटाई 128000 योजन = 512000000 मील है।
3. पंकप्रभा की मोटाई 120000 योजन = 480000000 मील है।
4. धूमप्रभा की मोटाई 118000 योजन = 472000000 मील है।
5. तमप्रभा की मोटाई 116000 योजन = 464000000 मील है।
6. महातमप्रभा की मोटाई 108000 योजन = 432000000 मील है।

सातों पृथ्वियाँ ऊर्ध्व दिशा को छोड़कर शेष नौ दिशाओं में घनोदधिवात वलय से लगी हैं, किंतु आठवीं दसों दिशाओं में ही घनोदधिवात वलयों को छूती है। उपर्युक्त पृथ्वियाँ पूर्व और पश्चिम दिशा के अंतराल में वेत्रासन के सदृश आकार वाली हैं तथा उत्तर और दक्षिण में समान रूप से दीर्घ एवं अनादि निधन हैं।

(2) ऊर्ध्वलोक का वर्णन

सामान्य दृष्टि से सुमेरु के तल भाग से लेकर लोकाकाश पर्यंत अंश को ऊर्ध्वलोक कहते हैं। ऊर्ध्वलोक का उत्सेध 7 राजू परिणाम है। विशेष दृष्टि से ऊर्ध्वलोक को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है। सुदर्शन मेरु के उत्सेध परिणाम अर्थात् 1000,40 योजन परिमाण क्षेत्र को मध्यलोक कहते हैं। नाभि गिरी की चूलिका के ऊपर बालाग्र परिमाण अंतर छोड़कर ऋजु विमान से लेकर अंतिम सर्वार्थसिद्ध नामक विमान के ध्वज दंड पर्यंत अर्थात् सिद्धक्षेत्र से 12 योजन नीचे तक का जो क्षेत्र है उसे ऊर्ध्वलोक कहते हैं, सर्वार्थ सिद्धि विमान के ध्वजदंड से लेकर लोक के अग्रस्थित तनुवातवलय पर्यंत क्षेत्र को ईषत् प्राग्भार

संज्ञा वाली अष्टम् पृथ्वी कहते हैं। वस्तुतः ईषत् प्राग्भार पृथ्वी सर्वार्थसिद्धि विमा के ध्वज दंड से 12 योजन ऊपर जाकर स्थित है। इसकी चौड़ाई 1 राजू लंबा (उत्तर-दक्षिण) 7 राजू एवं मोटाई 8 योजन परिमाण हैं। इस आठवीं पृथ्वी के ठीक मध्य में रजतमय क्षेत्राकार और मनुष्य क्षेत्र के व्यास प्रमाण सिद्ध क्षेत्र है, जिसके मध्य की मोटाई आठ योजन है और अन्यत्र क्रम से घटती हुई, अंत में ऊँचे (सीधे) रखे हुए कटोरे के सदृश चौड़ी (मोटाई) रह गयी है। इस सिद्धक्षेत्र के उपरवर्ती तनुवातवलय में सम्यक्त्वादि आठ गुणों से युक्त और अनंत सुख से तृप्त सिद्ध परमेष्ठी स्थित हैं। इस सिद्धक्षेत्र का व्यास मनुष्य क्षेत्र के सदृश अर्थात् 4500000 योजन परिणाम है। (तिलोपपण्णति 12)

(3) मध्यलोक का वर्णन

विश्व तीन भागों में विभक्त है। उसमें से जो मध्यलोक विभाग है, उसका वर्णन द्वीपसागर प्रज्ञप्ति से किया जा रहा है। 1 राजू विस्तार वाले मध्यलोक में द्वीप को वेष्टित करके समुद्र एवं समुद्र को वेष्टित करके द्वीप, इसी प्रकार अढाई उद्धार-सागर के रोम के प्रमाण असंख्यात द्वीप समूह हैं। पूर्व अध्याय में वर्णित 1 लाख योजन प्रमाण जंबूद्वीप इस असंख्यात द्वीप समुद्र का सर्वप्रथम द्वीप है। इसको वेष्टित करके लवणोदक समुद्र है। लवणोदक समुद्र को वेष्टित करके दूसरा घातकी खण्ड द्वीप है। इसको वेष्टित करके दूसरा कालोदक समुद्र है। इसी प्रकार परस्पर को वेष्टित करते हुए अंतिम स्वयंभूरमण द्वीप पर्यंत जानना चाहिए। इन असंख्यात द्वीप समुद्र के मध्य में से आदि एवं अंत के 16, 17 द्वीप समुद्र का नाम उद्धृत किया गया है। प्रथम समुद्र का नाम लवण समुद्र एवं द्वितीय समुद्र का नाम कालोदक है, अन्य समुद्रों का नाम द्वीप के नाम सदृश ही हैं- (1) जंबूद्वीप (2) धातकी खण्ड (3) पुष्करवर (4) वारुणिवर (5) क्षीरवर (6) धृतवर (7) क्षौद्रवर (8) नन्दीश्वरवर (9) अरुणवर (10) अरुणभासवर (11) कुण्डलवर (12) शंखवर (13) रुचकवर (14) भुजगवर (15) कुशगवर (16) क्रोज्जवर आदि के अभ्यन्तर 16 द्वीप। इसके बाद असंख्यात द्वीप समुद्रों को छोड़कर अंत के 16 द्वीपों के नाम इस प्रकार हैं- (1) मनः शिला द्वीप (2) हरिताल द्वीप (3) सिन्दूर (4) श्यामवर (5) अञ्जनवर (6) हिंगुलिवर (7) रूपवर (8) सुवर्णवर (9) वज्रवर (10) वैडूर्यवर (11) नागवर (12) भूतवर (13) यक्षवर (14) देववर (15)

अहीन्द्रवर (16) स्वयम्भूरमण द्वीप। जंबूद्वीप से संख्यात द्वीप समूह के बाद एक दूसरा जंबूद्वीप है।

जिस भूखंड के ऊपर हम लोग वास कर रहे हैं, उसका नाम भारत है। भारत जिस भूखंड में स्थित उसका नाम जंबूद्वीप है। जंबूद्वीप सार्थक नाम वाला है, क्योंकि 'जंबूवृक्षोपलक्षितत्वात्। उत्तरकुरुणां मध्ये जंबू वृक्षोऽनादिनिधन पृथिवीपरिणामोऽकृत्रिमः सपरिवारस्तदुपलक्षितोऽयं द्वीपः' अर्थात् जंबूवृक्ष से उपलक्षित होने के कारण, इस द्वीप का नाम जंबूद्वीप है। उत्तरकुल के मध्य अनादिनिधन, पृथ्वीमयी, अकृत्रिम और परिवार वृक्षों से युक्त जंबूद्वीप है।

मध्यलोक अर्थात् तिर्यक् लोक असंख्यात द्वीप समुद्रों से सहित है। असंख्यात द्वीप समुद्रों के मध्य में जंबूद्वीप का अवस्थान, आचार्यों ने निम्न प्रकार किया है-

'तन्मध्ये मेरुनाभिर्वृत्तो योजन शत सहस्र विष्कम्भो जंबूद्वीप।' तेषां मध्ये तन्मध्ये। केपाम्? पूर्वोक्तानां द्वीपसमुद्राणाम्। नाभिरिव नाभिः। मेरु नाभिर्यस्तय स मेरुनाभिः वृत्त आदित्य मण्डलोपमानः शतानां सहस्रं शतसहस्रम् योजनानां शत सहस्र योजन शतसहस्रम्। योजन शत सहस्र विष्कम्भो यस्य सोऽयं योजन शतसहस्र विष्कम्भः।

पूर्वोक्त द्वीप समुद्रों के मध्य में नाभि स्थानीय अर्थात् सर्व द्वीप समुद्रों के मध्य भाग में एवं जिसके मध्य में मेरु पर्वत है, जो सूर्यमण्डल के समान गोल है, जिसका विस्तार 100000 योजन है, ऐसा यह जंबूद्वीप है। जंबूद्वीप की सूक्ष्म परिधि 316227 योजन 3 कोश 128 धनुष 13 1/2 अंगुल से कुछ अधिक है। जंबूद्वीप की स्थूल परिधि 300000 योजन है।

$$\text{स्थूल क्षेत्रफल} = \frac{\text{स्थूल परिधि} \times \text{व्यास}}{4}$$

$$\text{सूक्ष्म क्षेत्रफल} = \frac{\text{सूक्ष्म परिधि} \times \text{व्यास}}{4}$$

$$\text{जंबूद्वीप का स्थूल क्षेत्रफल} = \frac{300000 \times 100000}{4} = 7500000000 = 750 \text{ करोड़ (7 अरब 50 करोड़)}$$

$$\text{सूक्ष्म क्षेत्रफल} = \frac{316227 \text{ योजन } 3 \text{ कोश } 128 \text{ धनुष } 13 \frac{1}{2} \text{ अंगुल} \times 100000}{4}$$

$$= 7905694150 \text{ योजन } 1 \text{ कोश } 1515 \text{ धनुष } 2 \text{ हाथ } 12 \text{ अंगुल}$$

ब्रह्माण्ड के छः मौलिक द्रव्यों का वर्णन

लोक धर्म, अधर्म, आकाश, जीव, पुद्गल एवं काल से गठित है। इसीलिए ये षट्द्रव्य लोक के मूलभूत पदार्थ हैं। षट्द्रव्य को छोड़कर लोक नहीं है। लोक को छोड़कर षट्द्रव्य नहीं है। लोक का विशेष अध्ययन षट्द्रव्यों का अध्ययन है एवं षट्द्रव्यों का अध्ययन लोक का अध्ययन है। मूलतः उपरोक्त षट् द्रव्य ही वस्तुतः मूल तत्व हैं। अन्य दृश्यमान, अनुभवगम्य एवं शास्त्र में प्रणीत अन्य तत्वों की इन्हीं छः द्रव्यों के परिणामन विशेष एवं मिश्रण विशेष से ही सृष्टि है। विश्व तत्व जिज्ञासुओं के लिए षट्द्रव्यों का विशेष विश्लेषण आवश्यक है।

1. जीव पुद्गल द्रव्य की गति का माध्यम- धर्म द्रव्य

क्रियाशील विश्व में यत्र-तत्र, यदा-कदा अनेक क्रियायें होती दिखाई देती हैं। आकाश में पक्षी उड़कर एक स्थान से दूसरे अन्य स्थान में गमन करते हैं। पानी उद्गम स्थान से नदी के माध्यम से समुद्र पर्यन्त जाता है। आकाश में व्योमयान जाते हैं। समुद्र में जहाज चलते हैं। जल में जलचर, थल में थलचर एवं आकाश में आकाशचर विचरण करते हैं। ट्रेन, बस आदि अपने-2 पथ पर गति करते हैं। मनुष्य दैनिक कार्य को सम्पन्न करने के लिए अपने हाथ, पैर आदि अवयवों का संचालन करके अनेक कार्य करते हैं। आकाश में मेघ संचार करते हैं। यह समस्त क्रियायें स्वयं द्रव्य को अपनी शक्ति के माध्यम से मुख्य रूप से कार्य करने पर भी एवं जलमाध्यम, थल माध्यम, आकाश माध्यम आदि विशेष माध्यम होने पर भी इन सब के लिए कोई एक सर्व साधारण निमित्त, कारण होना चाहिए। इसमें निमित्त कारणभूत जो द्रव्य है उसको जैनों की विशेष परिभाषा में “धर्म द्रव्य” अर्थात् गतिमाध्यम द्रव्य कहते हैं।

गइ परिणयाण धम्मो पुग्गल जीवाण गमण सहयारी ।

तोयं जह मच्छाणं अच्छंता णेव सो णेई ॥

(17) (द्रव्यसंग्रह)

जैसे पानी मछलियों को गमन करने में सहायक है उसी प्रकार धर्मद्रव्य जीव और पुद्गलों को गमन में सहायक है किंतु गमन नहीं करते हुए जीव एवं पुद्गल

को गमन में सहकारी नहीं है।

इस कथन में जैन दर्शन के अनुसार जो एक विशेष धर्म द्रव्य है उसका वर्णन है। यह ध्यान रखना आवश्यक है कि वैदिक दर्शन शास्त्र धर्म शब्द का जो अर्थ करते हैं उससे जैन दर्शन शास्त्र कुछ भिन्न अर्थ करता है। जैन दर्शन के अनुसार धर्म द्रव्य का अर्थ एक प्रकार से ईश्वर है। जो कि द्रव्यों के गमन में सहकारी है। धर्म द्रव्य की सहायता से जीव और पुद्गल गमन करते हैं। धर्म द्रव्य जीव और पुद्गल को गमन नहीं कराता किंतु जब वे गमन प्रारम्भ करते हैं उस समय में सहायक होता है। समस्त जैन शास्त्रों में धर्म द्रव्य के विषय में प्रायः एक जैसे ही उदाहरण दिये गये हैं। जैसे मछली जल में, जल के बिना प्रेरणा के गमन करती है किंतु जलगमन में आवश्यक है उसीप्रकार जीव और पुद्गल के गमन के लिए धर्म द्रव्य की सहायता आवश्यक है परन्तु उसका गमन धर्म द्रव्य के द्वारा प्रेरित नहीं है। धर्म द्रव्य अमूर्तिक, निष्क्रिय, नित्य है।

इसीलिए धर्म द्रव्य स्वयं गमनशील नहीं है। न ही अन्य द्रव्यों के गमन में सक्रिय भाग लेता है बल्कि जीव और पुद्गलों के गमन में सहायक होता है। धर्म द्रव्य के बिना जीव, पुद्गल गमन नहीं कर सकते हैं।

गति सहायक धर्म द्रव्य के लिए अन्य उदाहरण भी ले सकते हैं जैसे-रेल की पटरी। रेल जब गमन करती है तब उसको गमन में पटरी सहायक होती है। स्थिर रेल को रेल की पटरी बलपूर्वक गमन नहीं कराती है। रेल तो वाष्प, अलैक्ट्रिक शक्ति के द्वारा एवं चालक के द्वारा परिचालित होकर चलती है। तो भी रेल की पटरी के बिना रेल गमन नहीं कर सकती है। इसी प्रकार थलचर जीव, जलचर जीव एवं आकाशचर जीव जब थल, जल, आकाश में गमन करते हैं तो उससमय क्रमशः थल, जल और आकाश के बिना गमन नहीं हो सकता। उसी प्रकार प्रत्येक गमनात्मक क्रिया में धर्म द्रव्य सहायता करता है।

2. अधर्म द्रव्य (जीव पुद्गल की स्थिति में माध्यम)

पक्षी आकाश में उड़ता हुआ एक स्थान पर बैठ जाता है। यानवाहन की गति रोकने पर वह यानवाहन स्थिर हो जाता है। पथिक चलते-2 क्लान्त श्रांत होने पर वृक्ष के नीचे बैठ जाता है। इसी प्रकार की स्थिति में जो एक साधारण निमित्त (सहायक) कारण है उसको अधर्म द्रव्य कहते हैं। “अधर्म द्रव्य” यह शब्द जैन दर्शन का एक विशेष परिभाषिक शब्द है। इसका अर्थ पाप नहीं है; किन्तु एक

अमूर्तिक, निष्क्रिय लोकाकाश व्यापी असंख्यात प्रदेशी वाला एक शाश्वतिक द्रव्य है। यह द्रव्य ठहरते हुए जीव/पुद्गल को ठहरने में केवल सहकारी कारण है। आचार्यों ने कहा है-

ठाण जुदाण अधम्मो पुग्गलजीवाण ठाण सहयारी।

छाया जह पहियाणं गच्छंता णेव सो धरई ॥

(18) (द्रव्य संग्रह)

जैसे वृक्ष की छाया, ठहरते हुए यात्रियों को स्थान देती है उसी प्रकार अधर्म द्रव्य ठहरते हुए जीव और पुद्गल को ठहरने में सहायक होता है, किन्तु गमन करते हुए जीव व पुद्गल को ठहराने के लिए प्रेरणा नहीं देता है।

अधर्म द्रव्य के संबंध में उपरोक्त उदाहरण समस्त जैन शास्त्रों में मिलता है। प्रथमतः अधर्म का पृथ्वी के साथ संबंध जोड़ा गया है। जैसे-चलते हुए जीवों को पृथ्वी ठहराती नहीं है; किन्तु ठहरते हुए जीव को ठहरने में सहायता देती है। द्वितीयतः अधर्म द्रव्य को छाया के समान कहा गया है जो कि बलपूर्वक सूर्य किरणों से संतप्त यात्रियों को ठहराती नहीं है; किन्तु जब ये यात्री स्वयं छाया में आकार बैठते हैं तब उनको बैठाने में सहायक होती है।

इसीलिए हम लोगों को स्मरण रखना चाहिए कि धर्म द्रव्य बिना कोई द्रव्य गति नहीं कर सकता है और अधर्म द्रव्य के बिना कोई ठहर नहीं सकता है। संपूर्ण विश्व दो भागों में विभक्त है। (1) लोकाकाश- जो धर्म एवं अधर्म द्रव्य से व्याप्त है एवं जिसमें गति एवं स्थिति होती है और (2) अलोकाकाश - जो कि लोकाकाश से परे है, जो धर्मद्रव्य एवं अधर्म द्रव्य से रहित है। पहले ही ज्ञात है कि ऊर्ध्वगमनत्व जीव का एक स्वभाव है। जब जीव क्रमशः ऊपर की ओर गमन करने के लिए पुरुषार्थ करता है, तब ही वह समर्थ हो सकता है जबकि धर्म द्रव्य की सहायता मिलती हो। क्रमिक उच्चतर से उच्चतम गमन से वह उस सीमित लोकाकाश के छोर तक पहुँचता है जिसके आगे धर्म द्रव्य नहीं है। अतएव वहाँ रहने के लिए बाध्य होता है। मुक्त जीव लोकाकाश के अग्रभाग में स्थित है जबकि आत्मा में ऊर्ध्वगमनत्व की शक्ति निहित है तो फिर वे धर्म द्रव्य के अभाव से ऊपर गमन नहीं कर पाते हैं।

विज्ञान की अपेक्षा इसकी मान्यता है किन्तु अभीतक इसके बारे में सम्पूर्ण रूप से आविष्कार नहीं हो पाया है। वैज्ञानिक न्यूटन के द्वारा आविष्कृत केन्द्राकर्षण

शक्ति प्रायः अधर्म द्रव्य के समान है। वे स्वयं इस केन्द्राकर्षण शक्ति के मूर्तिक या अमूर्तिक होने के बारे में अनभिज्ञ थे। कोई यदि उनको उस शक्ति के विषय में पूछता था तब वे उत्तर देते थे मैं पूर्ण रूप से इसके बारे में नहीं जानता। एवं इसके बारे में कहने के लिए अनेक समय चाहिए। प्रत्येक स्थिर कार्य के लिए निश्चितरूप से आकर्षण की सहायता चाहिए किन्तु यह शक्ति भौतिक या अभौतिक इसका निर्णय मैं पाठकों के लिए छोड़ देता हूँ।

धर्मद्रव्य एवं अधर्म द्रव्य की लोक के संगठन के लिए नितान्त आवश्यकता है। इन दोनों द्रव्यों के अभाव में लोक का आकार एवं स्थिरता एवं गतिशीलता नहीं हो सकती है। इन दोनों द्रव्यों से रहित लोक, संपूर्ण रूप से विश्रुंखल एवं फट-भ्रष्ट हो जायेगा। संपूर्ण विश्व अनंत आकाश में कहाँ विलीन हो जायेगा उसका कोई पता ही नहीं रहेगा। जिसप्रकार हाइड्रोजन से भरे गुब्बारे के फट जाने पर हाइड्रोजन यत्र-तत्र चला जाता है उसी प्रकार इन दोनों द्रव्यों से रहित गुब्बारा रूपी विश्व के द्रव्य भी यत्र-तत्र चले जायेंगे। उस समय जो अवस्था होगी उसकी कल्पना मनुष्य अपने क्षुद्र मस्तिष्क में नहीं कर सकता है।

जैन विचारकों ने युक्तियुक्त प्रश्न उठाया है कि परमाणु समूह क्यों परस्पर सम्मिलित होकर इस विश्वरूपी महास्कंध में रहते हैं? वे क्यों नहीं अनंत अलोकाकाश में व्याप्त हो जाते हैं! यदि वे विस्तार को प्राप्त हो जायेंगे तब विश्व एक नहीं रहेगा। एक निश्चित सिद्धान्त है कि विश्व का एक निश्चित आकार है इसीलिए लोक निश्चित आकार सहित है। इसलिए इस विश्व के आकार को एवं पृथ्वी के आकार को निश्चित रखने के लिए दूसरे किसी पदार्थ की आवश्यकता नहीं है। इस पदार्थ का यह कार्य है कि दूर भागते हुए परमाणुओं को पृथ्वी के केन्द्र में बाँधकर रखना है। इसका कार्य उड़ते हुए परमाणु को स्थिति देना है। इस भौतिक सिद्धान्त को अधर्म अथवा स्थिति कहते हैं।

दोनों धर्म तथा अधर्म द्रव्य संपूर्ण लोकाकाश के आकाश में व्याप्त हैं। वे स्वभावतः संपूर्ण रूप से अभौतिक, अपौद्गलिक एवं अमूर्तिक हैं। पुद्गल के गुण उनमें नहीं पाये जाते हैं। आकाश के प्रदेश भी उनके प्रदेश नहीं है। वे दोनों वस्तुएं अतन्त्र, मौलिक वस्तु हैं। वे दोनों एक अनेक कहे जाते हैं। वे आकाशवर्ती, अलोकाशवर्ती हैं। वे अमूर्त एवं अरूपी हैं। वे हल्की अथवा भारी नहीं है। वे इंद्रियों के विषय नहीं हैं। उनका अस्तित्व उनके कार्य से जाना जाता है। इसीप्रकार दोनों

द्रव्यों के जो विशिष्ट गुण हैं उनका वर्णन जैन दर्शन में है।'

इसीप्रकार धर्म, अधर्म, द्रव्यों के लक्षण, उदासीन रूप से गति हेतुत्व एवं स्थिति हेतुत्व है। यदि दोनों को मुख्य हेतु एवं प्रेरक हेतु मानेंगे तब जिसकी गति है उसकी गति ही होगी। उसकी स्थिति नहीं हो सकती है और जिसकी स्थिति है उसकी गति नहीं हो सकती है। किन्तु एक ही जीव और पुद्गल की गति एवं स्थिति देखी जाती है। जब जीव, पुद्गल स्वयं ठहरते हैं एवं इच्छापूर्वक गमन करते हैं उस समय में धर्म द्रव्य गमन कराने में बाध्य नहीं करता है एवं अधर्म द्रव्य स्थिति कराने को बाध्य नहीं करता है। यदि धर्म द्रव्य और अधर्मद्रव्य गति एवं स्थिति कराने को बाध्य कराते तब जीव, पुद्गल एवं धर्म, अधर्म में संघर्ष होने लगता किन्तु उस समय संघर्ष नहीं होता है अतः सिद्ध होता है कि वे उदासीन कारण हैं।

(3) समस्त द्रव्यों को स्थान देने वाला आकाश द्रव्य- (लोक/विश्व तथा अलोक /प्रतिविश्व)

आकाश एक अमूर्तिक, शाश्वतिक, अनादि अनिधन, संकोच, विस्तार से रहित, सर्व व्यापक, अनन्तानन्त प्रदेशात्मक, सीमारहित, निष्क्रिय द्रव्य है। सर्व द्रव्यों को अवकाश प्रदान करना इस द्रव्य का विशेष गुण है। इस अवकाश प्रदान करने वाले विशेष गुण के कारण अन्य पांचों द्रव्यों का आधार आकाश है। अन्य सर्व द्रव्यों से अत्यन्त वृहत् होने के कारण तथा सर्व व्यापक होने के कारण अन्य द्रव्य आकाश का आधार नहीं हो सकता है। जबकि अन्य द्रव्यों का आधार आकाश होता है। आकाश स्वयं ही आधार होता है। इसीलिए आकाश स्वयं आधार-आधेय है। जितने प्रदेशों में आकाश ने अन्य द्रव्यों को अवकाश दिया है अर्थात् जितने आकाश प्रदेश में अन्य द्रव्य स्थित हैं उसको लोकाकाश कहते हैं। यह लोकाकाश असंख्यात् प्रदेशों वाला सीमित क्षेत्र है। लोकाकाश जो अन्य द्रव्यों से रहित है अनन्त दूरी पर्यन्त मात्र आकाश ही आकाश है। उसके प्रदेश अनन्तानन्त हैं। वस्तुतः लोकाकाश और अलोकाकाश दो द्रव्य नहीं बल्कि एक अखण्ड द्रव्य के दो अंशमात्र हैं। यह लोक और अलोक का विभाग अर्थात् स्थापना भी अनादि से अकृतिम भाव से हुई है। इस लोक-अलोक की सीमा में वृद्धि, हास नहीं होता है। इसकी सीमा में वृद्धि-हास न होने का मुख्य कारण गति हेतुत्व वाले धर्म द्रव्य एवं स्थिति

हेतुत्व वाले अधर्म द्रव्य का अवरथान है। धर्म द्रव्य तथा अधर्म द्रव्य अमूर्तिक, निष्क्रिय, लोकाकाश व्यापी, असंख्यात प्रदेशी अखण्ड द्रव्य होने के कारण लोकाकाश में स्थित कोई भी द्रव्य अलोकाकाश में नहीं जा सकता है। गतिशील जीव पुद्गल बिना धर्म द्रव्य की सहायता से आकाश में गति नहीं कर सकते हैं। आकाश को गति एवं स्थिति का कारण नहीं मान सकते हैं। जैसा कि आचार्यों ने कहा है-

आगासं अवगासं गमणट्ठिदि कारणेहिं देदि जदि ।

उड्ढगदिप्यधाणा सिद्धा चिट्ठति किध तत्थ ॥

(पंचास्तिकाय) (92)

यदि आकाश द्रव्य, चलन और स्थिति अर्थात् स्थिरता के कारण धर्म और अधर्म द्रव्य के गुण के साथ-साथ अवकाश देता है तब ऊर्ध्वगति वाले अप्रतिहत अनन्त शक्तिवाले प्रसिद्ध सिद्ध जीव लोकाग्र में स्थिर क्यों हो जाते हैं? इससे सिद्ध हुआ है कि अप्रतिहत शक्ति वाले सिद्ध जीव बिना धर्म द्रव्य के माध्यम से अलोक में नहीं जाते हैं तब अन्य द्रव्य कैसे गति कर सकते हैं? लोकाग्र में सिद्धों को स्थिर होने के कारण सिद्ध हुआ कि स्थिति हेतुत्व भी आकाश का गुण नहीं है। वह तो अधर्मद्रव्य का गुण है। अलोकाकाश में अधर्म द्रव्य के अभाव से भी यदि वहाँ द्रव्य माना जाये तो उसकी स्थिति कैसे हो सकती है? यदि आकाश को गति, स्थिति हेतुत्व मानेंगे तब अलोक हानि एवं लोक वृद्धि का प्रसंग आयेगा।

आकाश गतिमाध्यम द्रव्य नहीं

जदि हवदि गमणहेदु आगासं ठाणकारणं तेसिं ।

पसजदि अलोगहाणी लोगरस्स य अंतपरिबुड्ठी ॥

(पंचास्तिकाय) (94)

यदि आकाश द्रव्य उन जीव, पुद्गलों को गमन करने में सहकारी कारण हो तो अलोकहानि का प्रसंग आ जायेगा। और लोक के अंत की वृद्धि हो जायेगी। इसी प्रकार वृद्धि होती जाये तब लोकाकाश असंख्यात प्रदेश परिमाण वाले धर्म, अधर्म से अधिक हो जायेगा एवं कालक्रम से अलोकाकाश का अभाव हो जायेगा। वस्तुतः अनन्त आकाश होने पर भी लोकाकाश सीमित है। विज्ञान की अपेक्षा भी लोकाकाश सीमित माना गया है। यथा-

आश्चर्य की बात यह है कि गणितज्ञों के लेखा के माध्यम से सम्पूर्ण पदार्थों का परिमाण सीमित है एवं विश्व का विस्तार सीमित है। उन्होंने यह विचार नहीं किया कि सीमित के बाद आकाश कुछ नहीं है किन्तु सम्पूर्ण आकाश वक्र है जिससे कि प्रकाश किरणें सीधी रेखा से गति करने के बाद बहुत लम्बे समय के बाद पुनः अपने उद्गम स्थान को वापिस हो जाती है। उन्होंने प्रारम्भिक हिसाब किया है कि प्रकाश किरणें इस सम्पूर्ण वक्र स्थान को गोला कृति रूप में एकबार घूमने के लिए आवश्यक समय लगभग 10^{19} वर्ष (प्रायः 10 ट्रीलीयन अर्थात् 10000000000000000000) से कुछ कम नहीं है। एवं यह आकाश की अनंत की तुलना में बहुत आरामदेह है। एक गणितज्ञ विधिपूर्वक इसका अनुभव कर सकता है।

सापेक्ष दृष्टि से भी यह विश्व सीमित है। यह पूर्णतः विचारातीत है कि कोई खगोलज्ञ वहाँ से भी इस आकाश से परे लाँघ नहीं सकता है। जब एक संघणना आकाश को सीमित सूचित करती है तब गणितज्ञ उसके मानसिक चित्र में आकाश सीमित है यह निश्चित हुआ। वैज्ञानिक भी अनंत एवं सीमित आकाश के बारे में कहने में पूर्ण समर्थ नहीं है। स्वयं आइन्स्टीन ने भी आकाश के बारे में अनेक कल्पनायें उपस्थित की हैं क्या आकाश की सीमा है? यदि आकाश की सीमा है तो उसके आगे क्या है? अन्य एक दृष्टिकोण से आकाश की सीमा नहीं है। किन्तु आकाश के बाद आकाश है जो कि विचारातीत है। आइन्स्टीन के 'सापेक्षसिद्धान्त' की अपेक्षा आकाश सीमित है किन्तु इसका कोई अंत नहीं है। इसीप्रकार वैज्ञानिक सिद्धान्त से निश्चित होता है कि आकाश का एक स्वतन्त्र द्रव्य है। वैज्ञानिकों ने प्रकाश किरण का प्रयोग करके एवं उसका पुनः परिवर्तित होकर आने से आकाश को सीमित माना है किन्तु वह लोकाकाश है। क्योंकि लोकाकाश में आलोक (प्रकाश) की गति का माध्यम धर्म द्रव्य है। उसके आगे धर्म द्रव्य नहीं होने के कारण पुनः प्रकाश परावर्तित होकर लौट आया। इससे सिद्ध हुआ कि लोकाकाश सीमित है एवं लोकाकाश में ही धर्म द्रव्य है। अन्य एक दृष्टि से जिस आकाश को सीमातीत मानते हैं वह आकाश अन्य कुछ नहीं है "अलोकाकाश" है। अलोकाकाश अनंत होने के कारण सामान्य बुद्धिजीवी के ज्ञान के बाहर है। यदि लोकाकाश को अनंत मानेंगे तो उसका आकार सीमातीत होने के कारण उसका कोई संगठन नहीं होगा और बिना संगठन विश्व की स्थिति

वही बन सकती है। सम्पूर्ण धर्म द्रव्य के असंख्यात प्रदेश, अधर्म द्रव्य के असंख्यात प्रदेश, काल द्रव्य के असंख्यात प्रदेश, जीवराशि-अनंत एवं पुद्गल राशि अनंतानंत है किन्तु सम्पूर्ण आकाश प्रदेश उपरोक्त समस्त द्रव्यों के प्रदेशों से भी अनंत गुणा होने के कारण उनका परस्पर कोई सम्बन्ध नहीं रहेगा। अन्य द्रव्य मिलेंगे तब उनके प्रदेश परस्पर अत्यन्त दूर हो जाने के कारण उनका परस्पर कोई सम्बन्ध नहीं रहेगा। पदार्थ स्वभावतः ही सर्वदा पूर्ण रूप से ही रहता है, अर्थात् उसके सभी प्रदेश अथवा अंश परस्पर मिलकर ही रहते हैं। जैसे एक घड़े के सभी परमाणु परस्पर एक निश्चित आकार से सम्बन्धित होकर के रहते हैं। यदि वे परमाणु परस्पर बिछुड़ जायेंगे तब घड़ा नहीं रहेगा एवं घड़े का अर्थाक्रिया-कार्यत्व जो अर्थ जलधारण है वह भी नहीं रहेगा। इसीप्रकार धर्म, अधर्म, द्रव्य के अभाव में तथा लोकाकाश विस्तृत होते-2 अनंत होने से तथा लोकाकाश में गति हेतुत्व एवं स्थिति हेतुत्व मानने से विश्व की उस श्रृंखला तथा द्रव्यों के अभाव का प्रसंग आ जायेगा। इससे सिद्ध हुआ कि अनंत अलोकाकाश के मध्य में असंख्यात प्रदेशी लोकाकाश है। जिसमें गति एवं स्थिति हेतु रूप, धर्म द्रव्य, अधर्मद्रव्य व्याप्त हैं।

लोकाकाश के ऊर्ध्व, अधो, पार्श्व, विपार्श्व में अर्थात् संपूर्ण दिक् में अनंत आकाश होने के कारण लोकाकाश अलोकाकाश के बहुमध्य भाग में है। जिसप्रकार एक वर्तुलाकार के बाह्य भाग में कहीं भी एक बिन्दु लेंगे तो वह बिन्दु उस वर्तुलाकार वस्तु के पृष्ठ भाग का मध्य बिन्दु ही होगा। उसीप्रकार लोकाकाश के बाह्य भाग में सर्वत्र अनंत आकाश होने के कारण लोकाकाश अलोकाकाश के मध्य भाग में है।

आकाश द्रव्य का विशेष लक्षण

टेबल के ऊपर पुस्तक है इसलिए टेबल पुस्तक का आधार है। पुनः टेबल का आधार गृह का तल भाग है। गृह का आधार ग्राम है, ग्राम का आधार जिला है, जिले का आधार देश है, देश का आधार महादेश है, महादेश का आधार पृथ्वी है, पृथ्वी का आधार लोकाकाश है और लोकाकाश का आधार अलोकाकाश है, अलोकाकाश का आधार अन्य कोई द्रव्य नहीं है किन्तु स्वयं अलोकाकाश ही है। क्योंकि अलोकाकाश से अर्थात् आकाश से बड़ा कोई द्रव्य नहीं है। सामान्य दृष्टिकोण से विभिन्न द्रव्य को परस्पर आधार एवं अवकाश देने पर भी संपूर्ण द्रव्यों का आधार देने वाला एक ही द्रव्य है और वही आकाश है। आकाश द्रव्य

का विशेष गुण अवगाहनत्व है। जैसे आचार्यों ने कहा है—

सत्वेसिं जीवाणाम् सेसाणां तह य पुग्गलाणं च ।

जं देदि विवरमखिलं तं लोए हवदि आयासं ॥

(पंचास्तिकाय)

समस्त जीवों को वैसे ही धर्म, अधर्म और काल इन तीनों द्रव्यों को और समस्त पुद्गलों को जो समस्त जगह देता है वह द्रव्य इसलोक में आकाश द्रव्य होता है।

(4) जीव द्रव्य

विश्व में मुख्य रूप से दो प्रकार की वस्तुएँ हैं, एक चैतन्य शक्ति सहित एवं अन्य चैतन्य शक्ति रहित वस्तु। वस्तुतः चैतन्य शक्ति सहित वस्तु का प्रधान एवं महात्म्य विशेष है। निम्नश्रेणीय एक कोशीय एकेन्द्रिय से लेकर संसारी जीव की अपेक्षा संज्ञी पंचेन्द्रिय देव पर्यन्त अनन्तानंत जीव हैं। समस्त अशुद्धावस्था को अतिक्रम करने वाले शुद्ध ज्ञान, दर्शन, सुख, आनंद स्वरूप में रहने वाले अनन्तानंत मुक्त जीव हैं। लोक में इंद्रियों द्वारा ग्रहण योग्य प्रायः अधिकांश पदार्थ जीव द्वारा ग्रहीत एवं त्यक्त शरीर का अवयव स्वरूप है। विशेष रूप से एकेन्द्रिय जीव द्वारा गृहीत एवं त्यक्त शरीर लोक में पाये जाते हैं। जल में जलचर जीव, पृथ्वी में पृथ्वीकायिक जीव, वायु में वायुकायिक जीव, अग्नि में अग्निकायिक जीव एवं वनस्पति में वनस्पतिकायिक जीव पाये जाते हैं। एकेन्द्रिय सूक्ष्म पाँचों प्रकार के जीव सम्पूर्ण लोकाकाश में भरे हुए हैं। केवल एकेन्द्रिय बादर जीव दूसरों पर आधारित रहते हैं। इसीलिए इन जीवों की अपेक्षा विश्व जीव—स्वरूप है। त्रस जीव अर्थात् द्वीन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय जीव त्रसनाड़ी में कुछ विशेष अंश में रहते हैं। इसका विशेष वर्णन अन्यत्र किया है।

(5) काल द्रव्य

प्रत्येक वस्तु का वर्णन जैसे द्रव्य, क्षेत्र, भाव की अपेक्षा किया जाता है; उसी प्रकार काल की अपेक्षा भी किया जाता है। जैसे—द्रव्य के द्रव्य, क्षेत्र, भाव रहता है उसीप्रकार काल भी रहता है। जिसके माध्यम से काल का व्यवहार होता है। उसको निश्चय काल कहते हैं। जैसे— आचार्यों ने कहा है—

द्वपरिवट्टरुवो जो सो कालो हवइ ववहार ।

परिणामादि लक्खो वट्ठण लक्खोय परिमट्ठो ॥

(द्रव्यसंग्रह) (21)

जैन दर्शन की अपेक्षा जिसके माध्यम से द्रव्यों में परिवर्तन होता है उसे निश्चयकाल कहते हैं। जैसे— कुम्हार के चक्र के नीचे रहने वाली कील (धूरी) चक्र को चलाने में सहायक होती है। कील चक्र को चलाने के लिए प्रेरक कारण नहीं है किन्तु कील के बिना चक्र नहीं चलता है, इसीप्रकार जैन दर्शन के अनुसार काल निमित्त कारण है जिसके बिना द्रव्य में परिवर्तन नहीं हो सकता है। जैन दर्शन के अनुसार द्रव्य में जो परिवर्तन है वह परिवर्तन व्यवहार काल से नहीं होता है किन्तु परोक्ष रूप से काल की सहायता से होता है। इसको ही निश्चय काल कहते हैं। व्यवहार की अपेक्षा काल का व्यवहार घंटा, मिनट, सैकेण्ड में होता है। जिसके माध्यम से हम द्रव्य में होने वाले परिवर्तन को देखकर उनको गतन एवं पुरातन कहते हैं। इसी प्रकार दोनों प्रकार के समय को हम क्रम से काल एवं समय कहते हैं। हम जैनों के प्रत्येक अंकशास्त्रों में 'तेण कालेण तेण समयेण' अर्थात् उस काल में उस समय में इस प्रकार उक्ति प्राप्त होती है। काल एक शाश्वतिक अवं अनादि अनंत एवं अमूर्तिक द्रव्य है। निश्चय काल में कोई भेद नहीं है। व्यवहार काल अर्थात् समय आदि अनंत है एवं भेद सहित है जिसको हम घंटा, मिनट, सैकेण्ड कहते हैं। निश्चय काल व्यवहार काल का उपादान कारण है।

कोई कहता है कि काल नाम की वस्तु नहीं है। केवल सूर्य के उदय एवं अस्त के माध्यम से काल का व्यवहार होता है किन्तु यह सिद्धान्त युक्तियुक्त नहीं है। व्यवहार काल के व्यवहार के लिए निश्चय काल आवश्यक है अर्थात् व्यवहार के पीछे निश्चय काल निश्चित है। निश्चयकाल से रहित व्यवहार काल का व्यवहार नहीं हो सकता है। जिस समय में हम व्यवहार काल का व्यवहार करते हैं उस समय निश्चय काल को छोड़कर कोई कार्य नहीं हो सकता है। जैसे— सूर्योदय को समय कहते हैं। यह हुआ व्यवहार काल। जिस समय में सूर्य उदय हुआ उस समय विशेष को निश्चय काल कहते हैं। इसी प्रकार हम नरसिंह, चंद्रमुखी व्यवहार करते हैं। वस्तुतः मनुष्य सिंह नहीं है। मुख चंद्र नहीं है। सिंह एवं चंद्र स्वतंत्र मूल वस्तुएँ हैं। उस समय वस्तु का व्यवहार अन्य में करते हैं। यदि मूल वस्तु नहीं होती तो उसका व्यवहार भी नहीं हो सकता है। इतना ही क्यों? मूल वस्तु के अभाव से उसकी कल्पना, ज्ञान, व्यवहार आदि नहीं हो सकते हैं। प्रत्येक द्रव्य में, प्रत्येक समय में परिवर्तन होता ही रहता है। प्रत्येक एक समय में यगि परिवर्तन नहीं होता तब अनेक समय समूह में भी परिवर्तन नहीं हो सकता। जैसे जब हम

एक जलपात्र में चावल डालकर अग्नि पर रखते हैं तो कुछ समय बाद देखते हैं कि चावल भात के रूप में पक्व हुआ है। इससे हम सिद्ध करते हैं कि जबसे जल, अग्नि, चावल का संयोग हुआ उसी समय से शनैः शनैः उस चावल में परिणमन हुआ एवं अंत में चावल का भात के रूप में परिणमन हुआ। इस क्रिया ने कुछ समय ग्रहण किया। इस प्रक्रिया के अवस्थान को 'वर्तना' कहते हैं। निश्चय काल इस व्यवहार काल के माध्यम से सिद्ध किया जा सकता है कि जिसके माध्यम से चावल में परिणमन हुआ।

जिस प्रकार धर्म द्रव्य, अधर्म द्रव्य, एक जीव द्रव्य अखण्ड असंख्यात प्रदेश वाला द्रव्य है उसीप्रकार कालद्रव्य असंख्यात प्रदेशी अथवा अनंत प्रदेशवाला नहीं है किन्तु स्वतंत्र प्रदेश वाला असंख्यात द्रव्य है।

लोयायास पदेसे इक्केक्के जे ढिया हु इक्केक्का ।

रयणाणं च रासिमिव तेकालाणु असंख दव्वाणि ॥

(द्रव्यसंग्रह) (22)

एक-एक लोकाकाश के प्रदेश पर कालाणु एक-एक संख्या युक्त स्पष्ट रूप से स्थित हैं। जैसे रत्नों की राशि आपस में मिलती हुई नहीं रहती है उसी प्रकार कालाणु भी लोकाकाश की संख्या के बराबर असंख्यात द्रव्य हैं। कालद्रव्य के परमाणु कभी भी परस्पर में मिलते नहीं हैं किन्तु सर्वदा स्वतंत्र रहते हैं। संपूर्ण लोकाकाश कालाणु से भरा है। कोई भी लोकाकाश का प्रदेश कालद्रव्य से रहित नहीं है। कालाणु अविभाज्य असंख्यात निष्क्रिय एवं अमूर्तिक है। इसीप्रकार के स्वभाव को धारण करने वाला काल द्रव्य अन्य पाँचों द्रव्यों से भिन्न है। अन्य पाँचों द्रव्य स्वतंत्र प्रदेश को एवं अनेक प्रदेशों को धारण करने वाले हैं। किन्तु काल द्रव्य अनेक प्रदेशों को धारण करने वाला नहीं है। इसीलिए कालद्रव्य को अनस्तिकाय एवं अन्य द्रव्यों को अस्तिकाय कहते हैं।

(6) पुद्गल द्रव्य

जब हम चारों ओर निरीक्षण करते हैं तब आकाश में टिमटिमाते हुए नक्षत्र आल्हाद प्रदान करनेवाला चंद्र, प्रकाश शक्ति प्रदान करने वाला तेजस्वी सूर्य, अनेक निहारिकायें, पर्वत, नदी, समुद्र, मेघ आदि देखते हैं। गंधवाही पवन मन को आल्हादित करनेवाली सुगंध एवं घृणा उत्पन्न करने वाली दुर्गन्ध का वहन

करके हमको अनुभव कराता है। भोजन के समय हम सुस्वाद रस का अनुभव करते हैं। प्रकृति हमको हरा, नीला आदि अनेक वर्ण दिखाकर चक्षु को आल्हादित करती है। वसन्त काल में शरीर को आल्हादित करने वाली सुशीतल वायु बहती है। आकाश में चमकने वाला विद्युत् विश्व को काँम्पाने वाली मेघ गर्जना, दिग्बलय को अलंकृत करनेवाला इंद्रधनुष आदि हमें दृष्टिगोचर होते हैं। वर्तमान आधुनिक विज्ञान द्वारा आविष्कृत विद्युत् शक्ति अणुशक्ति, रेडियो, टेलीवीजन, राकेट आदि मानव समाज के अनेक हित-अहितकारी कार्य करते हैं। ये उपरोक्त समस्त विश्व विराट रूप में कौन से द्रव्य की लीला है? विश्व को आश्चर्य करने वाले इस द्रव्य का नाम पुद्गल है। इस लोकाकाश के प्रत्येक प्रदेश में पुद्गल द्रव्य अत्यन्त निविड़ रूप में अवस्थान कर रहा है। जैसे आचार्यों ने कहा है कि—

ओगाढ गाढ णिचिदो पोग्गलकायेहिं सब्बदोलोगो ।

सुहुमेहिं बादरेहिं य णांताणंतेहिं विविधेहिं ॥(64)

(पंचास्तिकाय)

त्रैलोक्य के समस्त आकाश प्रदेश पुद्गल स्कंध के द्वारा अतिशय गाढ़े रूप से भरे हुए हैं। आकाश में भरे हुए कुछ पुद्गल स्कंध इतने सूक्ष्म हैं कि वे चक्षु इंद्रिय के विषय नहीं होते हैं। कुछ पुद्गल स्कंध बादर हैं। जो दृष्टि गोचर होते हैं। इन पुद्गलों का परिमाण अपरिमित अर्थात् अनंतानंत है।

पाँचों इन्द्रियों के विषयभूत पदार्थ चाहे वे जो कुछ भी क्यों न हो सर्वपुद्गल ही हैं। भौतिक जगत् के समस्त आश्चर्यकारी कार्य सर्व पुद्गलों के ही हैं। अगर कोई वस्तु एक भी इंद्रिय का विषय होती है तब यह जानना चाहिए कि यह पुद्गल है। क्योंकि पौद्गलिक इंद्रियों के द्वारा पुद्गल ही जाना जा सकता है। अपौद्गलिक नहीं। जैसे— वायु, स्पर्शन इंद्रिय के द्वारा जानी जाती है। चक्षु इंद्रिय के द्वारा वायु नहीं जानने पर भी पुद्गल है; क्योंकि यह स्पर्श गुण पुद्गल में ही रहता है अन्य अपौद्गलिक वस्तु में नहीं। द्रव्यों का जो गुण है वह किसी भी परिस्थिति में द्रव्य को छोड़कर अन्य स्थान में नहीं रहते हैं। बल्कि किसी समय में इनमें कुछ गुण प्रगट रहते हैं एवं कुछ गुण अप्रगट रहते हैं। जैसे— ऑक्सीजन एवं हाइड्रोजन गैसीय अवस्था में चक्षु के द्वारा दिखाई नहीं देते हैं; किन्तु जब दोनों गैस मिलकर जलरूप में परिणमन होते हैं तब ये चक्षु इंद्रिय तथा स्पर्शन इंद्रिय के विषय होते हैं। गैसावस्था में जो गुण अप्रगट था वह जलावस्था में प्रगट हो गया। कटहल

जब कच्चा रहता है तब उसमें गंधगुण विशेष प्रगट नहीं रहता है किन्तु पक्व होने के बाद गंध गुण उत्कृष्टता को प्राप्त होकर सुगंध देने लगता है। इसीप्रकार जिसमें प्रगट एवं अप्रगट रूप में भी स्पर्श, रस, गंध, वर्ण पाये जाते हैं उसको पुद्गल कहते हैं। “पूरियन्ति गलयन्ति इति पुद्गलाः”

Pud Means ‘to combine’ and Gala means to disassociate.

Hence the rott- meaning of the word pudgala is “That which undergoes modifications by corminations and dissociations”

पुद्गल शब्द पुद् एवं गल दोनों शब्दों के मेल से बना है। पुद् अर्थात् मिलना। गल अर्थात् गलना या वियोग होना। जो द्रव्य मिलता है एवं बिछुड़ता है उसको पुद्गल कहते हैं।

परमाणु — जैसे यथावत् विधि से अनेक ईंट मिलकर घर बनता है उसीप्रकार यथावत् विधि से परमाणु मिलकर स्कंध बनते हैं। भौतिक जगत् के मूलभूत तत्व परमाणु ही पुद्गल हैं। यह शुद्ध पुद्गल परमाणु किसी भी इंद्रिय या किसी भी शक्तिशाली सूक्ष्मदर्शी यंत्र के द्वारा भी नहीं देखा जा सकता है। शुद्ध पुद्गल परमाणु का वर्णन आचार्यों ने निम्न प्रकार से किया है।

णिच्चो णाणवकासो ण सावकासो पंदेसंदो भेदा ।

खंधाणं पि य कत्ता पविहत्ता काल संखाणं ॥

(पंचास्तिकाय)

(1) परमाणु सदा अविनाशी है। जिस एटमबम के द्वारा एक भूखंड का विघ्वंश किया जा सकता है। इसी प्रकार के कोटि-2 एटमबम के द्वारा भी एक अणु का विखण्डन या विनाश नहीं किया जा सकता है। यह परमाणु कोटि-2 डिग्री फोरेनहाइट ताप में डालने पर भी जलकर भस्म नहीं होगा। अर्धचक्री तथा चक्री की पट्टरानी आदि वज्र के टुकड़े को भी अपनी उँगली के माध्यम से चूर्ण करके रंगोली बनाती हैं। इनके द्वारा भी परमाणु का किसी प्रकार परिवर्तन नहीं किया जा सकता है। इतना ही नहीं इनसे भी अधिक शक्तिशाली चक्री एवं अर्ध चक्री की समस्त शक्ति से भी परमाणु में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं हो सकता है। एक हजार देवों से सेवित, सहस्रधार से युक्त एवं एक समय में अनेक सेनाओं को नष्ट करने वाला सामर्थ्य से युक्त अमोघ शस्त्र सुदर्शनचक्र भी परमाणु को

विभाजित नहीं कर सकता है। अनंत शक्तिशाली तीर्थंकर भी इस परमाणु का विकास एवं टुकड़ा नहीं कर सकते हैं। यह परमाणु प्रत्येक अवस्था एवं प्रत्येक काल में नित्य नूतन रहता है। जिस प्रकार आत्मा अविनाशी है उसी प्रकार परमाणु अविनाशी है। यह अपने अविभागी एक प्रदेश से तथा रूपादि गुणों से भी कभी विकाल में भी रहित नहीं रहता है इसीलिए यह भी नित्य है।

(2) परमाणु प्रदेश से से जिनमें स्पर्शादि गुण जुदा नहीं हैं उनको अवकाश देने के लिए समर्थ होने पर परमाणु में अवकाश गुण है।

(3) जिस प्रकार परमाणु अपने गुण को अवकाश देता है, उसी प्रकार एक स्वयं शुद्ध प्रदेश परमाणु अन्य एक शुद्ध प्रवेशी परमाणु की स्वतंत्र सत्ता रखता है अर्थात् अपने एक प्रदेश परमाणु आदि मध्य, अंत में निर्विभाग एक ही है। इसी प्रकार दो आदि प्रदेशों की सत्ता उसमें नहीं है। इसीलिए द्रव्य दृष्टि से अवकाश जान देने को असमर्थ भी है।

(4) अपने एक ही प्रदेश से स्कंध का भेद करने वाला है। जब उसके विघटन का समय आता है उस समय यह स्कंध से निकल जाता है इसीलिए स्कंध का खण्ड करनेवाला कहा जाता है।

(5) परमाणु स्कंध का कर्ता है। परमाणु अपना काल पाकर एवं मिलन शक्ति की सामर्थ्य से स्कंध में जाकर मिल जाता है। इसीकारण इसको स्कंध का कर्ता भी कहा गया है। दो शुद्ध आदि परमाणु भी बँधने योग्य शक्ति, सामर्थ्य से परस्पर मिलकर सृष्टि करते हैं इसलिए भी परमाणु स्कंध का कर्ता है। दो परमाणुओं से घटित जघन्य स्कंध से लेकर असंख्यात, संख्यात, अनंतानंत तथा समस्त त्रिलोकरूपी महास्कंधों का कर्ता पुद्गल परमाणु ही है। अर्थात् सभी अविभाज्य परमाणु से घटित हैं।

(6) परमाणु काल की संख्या का भेद करने वाला भी है। एक आकाश के प्रदेश में रहने वाले परमाणु का दूसरे प्रदेश में गमन करते समय जो काल परिणाम प्रगट होता है उसको भेद करता है। वस्तुतः काल द्रव्य स्वतंत्र है एवं उसका भेदन नहीं किया जा सकता है। द्रव्यकाल की पर्याय स्वरूप व्यवहार काल धारावाहिक होने के कारण उसके स्वतंत्र दो टुकड़े नहीं किये जा सकते हैं। तो भी शुद्ध परमाणु जब मंदगति से एक आकाश प्रदेश से निकटस्थ अन्य आकाश प्रदेश को प्राप्त होता है, उस अवधि को अविभाज्य जघन्य काल अर्थात् समय कहा जाता है। यह व्यवहार समय धारावाहिक व्यवहार काल के एक सर्व जघन्य अंश होने के

कारण एवं इस जघन्य काल का परिमाण, परमाणु की मंदगति से प्राप्त होने के कारण परमाणु को काल अंश का भी कर्ता कहा गया है। क्षिप्र गति से तो परमाणु एक समय में 14 राजू गमन कर सकता है। परमाणु का उत्कृष्ट गमन एक समय में 14 राजू है। एवं मंदगति से एक समय में एक प्रदेश है, तथा मध्यम गमन दो प्रदेशों से लेकर एक प्रदेश कम 14 राजू पर्यन्त तक है। पुनः यह परमाणु द्रव्य क्षेत्र, काल, भावों की संख्या का भी भेद करता है। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से संख्या 4 प्रकार की है एवं चारों प्रकार की संख्यायें जघन्य, उत्कृष्ट के भेद से दो-दो प्रकार की है। एक परमाणु रूप जघन्य द्रव्य संख्या है। अनंत परमाणु रूप उत्कृष्ट द्रव्य संख्या है। इसी प्रकार परमाणु द्रव्य संस्था का भेद करने वाला है। एक प्रदेश रूप जघन्य क्षेत्र संख्या अर्थात् अविभाज्य शुद्ध परमाणु जितने आकाश को घेरता है उसको जघन्य क्षेत्र अर्थात् प्रदेश कहते हैं। अनंत प्रदेश रूप उत्कृष्ट क्षेत्र संख्या है। इसी प्रकार क्षेत्र का परिमाण भी परमाणु से किया जाता है। एक समय स्वरूप जघन्य व्यवहार काल संख्या है एवं उत्कृष्ट अनन्त समय स्वरूप व्यवहार काल संख्या है। इसी प्रकार काल का भी परिमाण परमाणु से किया जाता है। परमाणु द्रव्य में जो सर्व जघन्य वर्णादि हैं वह जघन्य भाव संख्या है। उसी परमाणु द्रव्य में सर्वोत्कृष्ट जो वर्णादि शक्ति है वह उत्कृष्ट भाव संख्या है। इसी प्रकार जघन्य, उत्कृष्ट, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावरूप संख्या परमाणु से जनित है। अतः शुद्ध परमाणु भौतिक जगत के मूलभूत समस्त कार्य कारण का मूलाधार है।

अवगाहनत्व से सान्द्रता में वृद्धि

यह प्रश्न होना स्वाभाविक है कि लोकाकाश के प्रदेश असंख्यात हैं; उस असंख्यात प्रदेश में असंख्यात प्रदेशी एक धर्म, असंख्यात प्रदेशी एक अधर्म द्रव्य, असंख्यात कालाणु, अनन्तानंत जीवराशि एवं अनन्तानंत जीवराशि से भी अनन्तगुण पुद्गल द्रव्य किस प्रकार समाविष्ट होते हैं? यह प्रश्न अत्यन्त उपयुक्त है एवं इसका उत्तर जितना कठिन है उतना सरल भी है। आचार्यों ने इसका उत्तर देते हुए कहा है कि—

जवादियं आयासं अविभागी पुग्गलाणुवट्ठं।
तं खु पदेसं जाणे सव्वाणुट्ठाणदाणरिहं ॥

(द्रव्यसंग्रह) (27)

जितने आकाश प्रदेश में एक अविभाज्य पुद्गल परमाणु रहता है उसको प्रदेश कहते हैं। उस एक आकाश प्रदेश में समस्त द्रव्यों के प्रदेश रह सकते हैं। इस

एक आकाश प्रदेश में धर्म द्रव्य का एक प्रदेश, अधर्म द्रव्य का एक प्रदेश, एक कालाणु, संख्यात्-असंख्यात्, अनन्तानंत पुद्गल परमाणु तथा अनेक जीव के प्रदेश रह सकते हैं। यह आकाश का अवगाहनत्व गुण है। धर्म द्रव्य, अधर्म द्रव्य तथा काल द्रव्य अमूर्तिक होने से उनको अवगाहन देना आकाश के लिए कोई विशेष बात नहीं है किन्तु विशेष बात जीव और पुद्गल की होती है। आकाश द्रव्य में विशेष अवगाहन शक्ति होने पर भी प्रत्येक द्रव्य में साधारण रूप से अवगाहनत्व शक्ति है। निगोदिया जीव में भी इसी प्रकार की शक्ति पायी जाती है। वस्तुतः संसार जीवराशि में निगोद राशि का परिमाण सबसे अधिक है अर्थात् अनन्तानंत है। एक निगोद शरीर में द्रव्य प्रमाण से भूतकाल के सर्व सिद्धों से अनन्तगुण जीव पाये जाते हैं। जिसप्रकार एक निगोद शरीर में अनन्तानंत निगोद जीव समाविष्ट होते हैं उसी प्रकार एक पुद्गल परमाणु में भी सूक्ष्मत्व एवं अवगाहनत्व शक्ति के कारण अनन्तानंत परमाणु रह सकते हैं। अनन्तानंत परमाणु मिलकर सूक्ष्म परिणमन के कारण एक परमाणु के समान हो जाते हैं। उसमें द्रव्य दृष्टि से अनेक परमाणु हैं। परन्तु आकार दृष्टि से एक परमाणु के समान है। जैसे— एक कमरे में एक दीपक जलाने पर उस दीपक के प्रकाश के द्वारा संपूर्ण कमरा भर जाता है। उसमें पुनः 2-3-4 आदि दीपक जलाने पर भी उस कमरे में ही वे प्रकाशरूपी पुद्गल समाविष्ट हो जाते हैं। उदाहरण स्वरूप एक गिलास में भस्म भर दीजिए; उस गिलास में ऊँटनी का दूध डालिए; ऊँटनी का दूध भी उसमें समावेशित हो जायेगा; उसमें कुछ सुई प्रवेश करा दीजिए। सुई का भी उसमें प्रवेश हो जायेगा। इसी प्रकार पुद्गल में एक सूक्ष्म परिणाम अवगाहन शक्ति है। परिणमन शक्ति के कारण उसका आकार कम रहने पर भी द्रव्यत्व में कोई कमी नहीं होती। विज्ञान में भी पुद्गल की अवगाहन शक्ति का विशेष चिंतन किया गया है। एडींगटन ने लिखा है कि 1 टन = (28 मन 1000 कि.ग्रा.) नाभिकीय पदार्थ सहज से एक पाकेट में ले सकते हैं। कुछ कुब्जक नक्षत्र में प्राप्त अति सांद्रता वाले एक घन इंच वस्तु का वजन एक टन है। कुछ अत्यंत छोटे नक्षत्र से प्राप्त किये गये वस्तु के एक घन इंच परिमाण का वजन 620 टन है। क्या आप सोच सकते हैं कि 1 इंच लंबा, 1 इंच चौड़ा और 1 इंच मोटा किसी वस्तु का वजन 17 हजार मन हो? इसीप्रकार वजन-वृद्धि संभव है। इसी प्रकार वजन की वृद्धि होने के कारण उस वस्तु में सान्द्रता, रूप में समावेश होने वाले परमाणु कारण हैं। उस परमाणु में सांद्रता के कारण सूक्ष्मत्व एवं अवगाहनत्व शक्ति है।

अध्याय-3

अजीव (अचेतन) द्रव्य तथा पुद्गल का विशेष वर्णन

अजीव द्रव्य के भेद-प्रभेद

अज्जीवो पुण णेओ पुग्गल धम्मो अहम्म आयासं ।

कालो पुग्गल मुत्तो रुवादिगुणो अमुत्ति सेसा हु ॥

(द्र.सं. 15)

और पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश तथा काल इन पाँचों को अजीव द्रव्य जानना चाहिए। इनमें पुद्गल तो मूर्तिमान है। क्योंकि रूप आदि गुणों का धारक है और शेष (बाकी) के चारों अमूर्त हैं।

तत्त्वार्थ सूत्र में कहा भी है—

अजीवकाया धर्माधर्माकाशपुद्गलाः ।

(स्वतंत्रता के सूत्र पृ. 265)

धर्म, अधर्म, आकाश और पुद्गल ये अजीवकाय हैं।

सम्यग्दर्शन के कारणभूत अर्थात् श्रद्धेय / श्रद्धा करने योग्य द्रव्यों में से जीव द्रव्य का वर्णन पूर्व में सविस्तार से किया गया है। इस गाथा में अजीव द्रव्यों का वर्णन सूत्रबद्ध सारगर्भित वैज्ञानिक दृष्टिकोण से किया गया है। स्वजीव द्रव्य को जानने के लिए पर अजीव द्रव्य का ज्ञान होना आवश्यक है क्योंकि जब तक स्व एवं पर का ज्ञान नहीं होगा तब तक स्व का ग्रहण एवं पर का त्याग नहीं हो सकता। छहढाला में कहा है “विन जाने ते दोष गुणन को, कैसे तजिये गहिये” अनादि काल से जीव एवं अजीव (पुद्गल कर्म परमाणु) का संश्लेष संबंध हुआ है। जिसके कारण जीव, पुद्गल से प्रभावित होकर मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान, मिथ्याचारित्र रूप में परिणत होकर स्व-पर ज्ञान के भेद से रहित होकर स्व द्रव्य को पर द्रव्य एवं पर द्रव्य को स्व द्रव्य मान बैठा है। इसके कारण भी जीव अनादिकाल से भ्रमण करता हुआ अनंत दुःख को भोग रहा है। इसलिए स्व द्रव्य को जानने के लिए पर द्रव्य को जानना अनिवार्य है। स्व द्रव्य को जानकर, स्वद्रव्य को अन्य द्रव्य से अलग करना मोक्षमार्ग का, मोक्ष प्राप्ति का प्रधान एवं प्रथम कारण है।

जैसे वैज्ञानिक, प्रयोगशाला में अनेक तत्व से मिले हुए मिश्रण को वैज्ञानिक-

प्रणाली से पृथक् करते हैं वैसे आध्यात्मिक प्रयोगशाला में जीव एवम् अजीव रूप मिश्रण से स्व द्रव्य का अलग करना है। जैसे भौतिक मिश्रण को अलग करने के लिए उस मौलिक भौतिक तत्व का ज्ञान करना आवश्यक है, जिससे हम पृथक् कर सकते हैं वैसे ही वीतराग रूपी प्रयोगशाला में जीव के साथ अजीव द्रव्य का ज्ञान करना आवश्यक है। यही जैनागम का सारभूत एवं सत्य तथ्य है। पूज्यपाद स्वामी ने इष्टोपदेश में कहा भी है।

जीवोऽन्यः पुद्गलश्चान्य इत्यसौ तत्त्वसंग्रहः । (50)

यदन्यदुच्यते किंचित्, सोऽस्तु तस्यैव विस्तरः ।

“जीव जुदा है, पुद्गल जुदा है” बस इतना ही तत्व के कथन का सार है, इसी में सब कुछ आ गया है। इसके सिवाय जो कुछ भी कहा जाता है, वह सब इसी का विस्तार है।

आगासकाल जीवा धम्माधम्मा य मुत्तिपरिहीणा ।

मुत्तं पुग्गलदव्वं जीवो खलु चेदणो तेसु ॥

पंचास्तिकाय

जिसमें स्पर्श, रस, गंध, वर्ण पाये जाते हैं वे मूर्त द्रव्य हैं। स्पर्श, रस, गंध, वर्ण स्वभाव से रहित द्रव्य अमूर्त चैतन्य सद्भाव द्रव्य को चेतन द्रव्य कहते हैं। आकाश, काल, जीव, धर्म, अधर्म द्रव्य मूर्तिक स्वभाव से रहित होने के कारण अमूर्तिक द्रव्य है। पुद्गल द्रव्य मूर्तिक स्वभाव वाला होने के कारण मूर्तिक है। केवल एक पुद्गल द्रव्य ही मूर्तिक है अन्य द्रव्य नहीं हैं। एक जीव द्रव्य ही चेतन है अन्य आकाश, काल, धर्म, अधर्म एवं पुद्गल द्रव्य अचेतन हैं।

मूर्त- अमूर्त लक्षण

जे खलु इंदियगेज्झा विसया जीवेहिं होति ते मुत्तां ।

सेसं हवदि अमुत्तं चित्त उभयं समादियदि ॥99 ॥

जो पाँचों इन्द्रियों के द्वारा ग्रहण किये जाते हैं वे सर्व मूर्तिक हैं। इससे रहित अमूर्तिक हैं। मन के विषय मूर्तिक एवं अमूर्तिक दोनों हैं। स्पर्श, रस, घ्राण, चक्षु एवं कर्ण रूपी इंद्रियाँ पौद्गलिक होने के कारण इनके विषयभूत कोमल-कठोर आदि स्पर्श, खट्टा-मीठादि रस, सुगंध-दुर्गंधादि गंध, काला पीलादि वर्ण एवं शब्द रूप परिणमन करनेवाले पुद्गल स्कंध एवं इन गुणों से युक्त द्रव्य भी पौद्गलिक

ही हैं क्योंकि पौद्गलिक इंद्रियों में अमूर्तिक वस्तु को ग्रहण करने की शक्ति नहीं होती है। कोई एक सूक्ष्म रूप परिणमन रूप स्कंध एवं परमाणु यद्यपि इंद्रियों के द्वारा ग्रहण करने में नहीं आते तथापि इन पुद्गलों में ऐसी शक्ति है कि यदि वे कालांतर में स्थूलता को धारण करें तो इंद्रिय के ग्रहण करने योग्य होते हैं। इस शक्ति की अपेक्षा एवं उससे स्पर्शादि गुणों की सद्भाव की अपेक्षा उनको इंद्रिय ग्राह्य ही कहा जाता है। मन अपने विचार से मूर्तिक-अमूर्तिक दोनों वस्तुओं को जानता है। मन जब पदार्थ को ग्रहण करता है तब पदार्थ में नहीं जाता किंतु आप ही संकल्प रूप होकर वस्तु को जानता है। मति-श्रुतज्ञान का साधन मन है। मति-श्रुत ज्ञान का विषय समस्त द्रव्यों की कुछ पर्याय हैं। द्रव्यआगम पुद्गल स्वरूप होने पर भी भाव आगम अमूर्तिक है। अमूर्तिक भाव आगम के द्वारा एवं मन अपने विचारों से मूर्त और अमूर्त दोनों प्रकार के पदार्थों को जानता है।

मूर्त एवं अमूर्त द्रव्य

मूर्तामूर्ताविशेषश्च द्रव्याणं स्यान्निसर्गतः।

मूर्तस्यादिन्द्रियग्राह्यं तदग्राह्यमूर्तिमत् ॥(7)

(पञ्चाध्यायी)

छहों द्रव्यों में कुछ द्रव्य तो मूर्त हैं और कुछ अमूर्त हैं। द्रव्यों में यह मूर्त और अमूर्त का भेद स्वभाव से ही है किसी निमित्त से किया हुआ नहीं है। जो इंद्रियों से जाना जाय उसे मूर्त कहते हैं और जो इंद्रियों के अगोचर हो उसे अमूर्त कहते हैं।

न पुनर्वास्तवं मूर्तममूर्त स्यादवास्तवम्।

सर्वशून्यादिदोषाणां सन्निपातात्तथा सति ॥(8)

(पञ्चाध्यायी)

मूर्त पदार्थ ही वास्तविक है अमूर्त पदार्थ वास्तविक नहीं है, यह बात भी नहीं है क्योंकि ऐसा मानने से सब पदार्थों की शून्यता का प्रसंग आ जायेगा।

कितने ही मनुष्य, पुरुष प्रत्यक्ष होने वाले पदार्थों को ही मानते हैं, परोक्ष पदार्थ को नहीं मानते परंतु परोक्ष पदार्थों के स्वीकार किये बिना पदार्थों की व्यवस्था ही नहीं बन सकती। परोक्ष-पदार्थों की सत्ता, अनुमान और आगम से मानी जाती है। अविनाभावी हेतु से अनुमान प्रमाण माना जाता है और स्वानुभव अखण्ड युक्ति तथा अबाधकपने से आगम प्रमाण माना जाता है।

पुद्गल के बिना धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये चारों में रूप आदि गुणों का अभाव होने से अमूर्त है। जैसे अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत सुख और अनंत धीर्य ये चारों गुण सब जीवों में साधारण हैं, उसीप्रकार रूप, रस, गंध तथास्पर्श ये चारों गुण सब पुद्गलों में साधारण हैं। जैसे शुद्ध, बुद्ध एक स्वभाव के धारक सिद्ध जीव में अनंत चतुष्टय अतीन्द्रिय है। जैसे- राग आदि स्नेह रहित निज परमात्मा की भावना के बल से राग आदि स्निग्धता का विनाश होने पर अनंत चतुष्टय का शुद्धत्व है, वैसे “जघन्य गुणों का बंध नहीं होता है” इस बंधन से परमाणु द्रव्य में स्निग्ध-रुक्षत्व गुण की जघन्यता होने पर रूप आदि चतुष्टय का शुद्धत्व समझना चाहिये। (वृहद्द्रव्य संग्रह पृ.सं. 40)

पुद्गल की विभिन्न अवस्थायें

सदो बंधो सुहुमोथूलो संठाणभेदतम छाया।

उज्जोदादवसहिया पुग्गलदव्वस्स पज्जाया ॥16

शब्द, बंध, सूक्ष्म, स्थूल, संस्थान, भेद, तम, छाया, उद्योत और आतप इन शब्दों के सहित जो हैं वे सब पुद्गल द्रव्य की पर्याय हैं।

पूर्व में पुद्गल द्रव्य की प्रकारान्तर से “पुग्गल मुत्तोरुवादि गुणो” कहकर परिभाषा दी गई है अर्थात् पुद्गल मूर्तिक है क्योंकि उसमें रूपादि गुण हैं। इस गाथा में पुद्गल द्रव्य की विभाव-व्यंजन पर्यायों का वर्णन किया गया है। पांचों इंद्रियों के जितने भी विषय हैं वे सब पुद्गल की स्थूल पर्याय ही हैं भले कुछ पुद्गल की सूक्ष्म पर्याय भी इंद्रियों का विषय नहीं है। शुद्ध परमाणु तो किसी भी इंद्रिय के विषय नहीं हैं। इस गाथा में आधुनिक, भौतिक विज्ञान एवं रसायनिक विज्ञान का हर विषय का दिग्दर्शन संक्षिप्त रूप में किया गया है। जब आधुनिक विज्ञान का उदय तक नहीं हुआ था उसके पहले इस ग्रंथ की रचना हुई थी और उस समय भी हमारे ग्रंथकर्ताओं ने आधुनिक विज्ञान की सर्वश्रेष्ठ शाखा भौतिक विज्ञान एवं रसायनिक विज्ञान के हर पहलु को संक्षिप्त रूप में सूत्रबद्ध किया है। इससे सिद्ध होता है कि भारतीय लोग एवं विशेषकर जैनाचार्य पहले से महाविज्ञानिक रहे हैं। इसका कारण यह है कि जैन धर्म के जो प्रचारक तीर्थंकर होते हैं वे विश्व विज्ञान के पूर्ण ज्ञाता एवं 718 भाषाओं के ज्ञाता होते हैं। उनके द्वारा प्रतिपादित विषय को ही हमारे आचार्य अध्ययन करते हैं, मनन करते

हैं, लिपिबद्ध करते हैं, पढाते हैं, एवं प्रचार-प्रसार करते हैं। इसलिए प्राचीन काल से ही जैन धर्म में संपूर्ण ज्ञान-विज्ञान समाहित है। निम्न पंक्तियों में गाथोक्त पौद्गलिक विभिन्न पर्यायों का संक्षिप्त वर्णन किया है।

1. शब्द : दो स्कंध के परस्पर घर्षण या टकराव से जो कंपन होता है उसी तरंगे निकलती है। उसमें से जो तरंग कर्ण इंद्रिय का विषय होती है उसे "शब्द" कहते हैं। जब दो स्कन्ध के टकराव से कंपन होता है उसमें लोकाकाश में व्याप्त शब्द-वर्गणा भी कम्पित होती है एवं वह तरंग उत्पन्न केंद्र से दशों दिशाओं में योग्य परिस्थिति को प्राप्त करके विश्व में फैलती जाती है। जिस प्रकार शांत जलाशय में ऊपर से एक पत्थर फेंकने पर पत्थर एवं जल में जो टकराव होता है उसी तरंगे निकलती हैं और वे तरंगे तीर तक (किनारे तक) धीरे धीरे फैलती जाती हैं। शक्तिशाली तरंगे तीर तक आकर वापिस भी हो जाती हैं। इसीप्रकार शक्तिशाली तरंग भी केंद्र बिंदु से दसों दिशाओं में फैलते-फैलते लोकाकाश तक जाकर वापिस भी होती हैं। जिस प्रकार वीजापुर कर्नाटक के गोल गुम्बज में शब्द उत्पन्न होने पर वह शब्द गुम्बज की दीवारों से टकराकर वापिस होता है। इसे ही "प्रतिध्वनि" कहते हैं। इस शब्द तरंग को फैलने के लिए शब्द वर्गणा के साथ-साथ धर्मद्रव्य (गति माध्यम/ईथर) की आश्यकता होती है। आधुनिक रेडियो, बेतार के तार (वायरलेस) टेलिविजन, टेलिफोन आदि इस सिद्धांत के अनुसार कार्य करते हैं।

भाषात्मक तथा अभाषात्मक इस प्रकार शब्द दो प्रकार के हैं। उनमें भाषात्मक शब्द अक्षरात्मक और अनक्षरात्मक भेद से दो प्रकार का है। उनमें भी संस्कृत, प्राकृत तथा उनके अपभ्रंशरूप पेशाची आदि भाषाओं के भेद से आर्य, म्लेच्छ मनुष्यों के व्यवहार का कारण अक्षरात्मक भेद भी अनेक प्रकार का है और अनक्षरात्मक भेद द्वीन्द्रिय आदि त्रस जीवों में तथा सर्वज्ञ की दिव्यध्वनि में है। अभाषात्मक शब्द भी प्रायोगिक तथा वैस्त्रसिक भेद से दो प्रकार का है। उनमें वीणा आदि से उत्पन्न शब्द को तत, ढोल आदि से उत्पन्न शब्द को वितत, मंजीरे तथा ताल से उत्पन्न हुए शब्द को घन और वांस के छिद्र आदि से अर्थात् वंशी आदि से उत्पन्न शब्द को सुषिर कहते हैं। इस में कथित क्रम के अनुसार प्रायोगिक (प्रयोग से उत्पन्न होने वाला) शब्द चार प्रकार का है, और विस्त्रसा अर्थात् स्वभाव से उत्पन्न वैस्त्रस्तिक शब्द जो कि मेघ आदि से उत्पन्न होता है वह अनेक प्रकार का है।

(बृ. द्रव्य संग्रह पृ. 40)

2. बंध : पुद्गल में स्निग्ध एवं रूक्ष गुण के कारण परस्पर में जो संश्लेष संबंध होता है उसे बंध कहते हैं। बालु, सीमेंट, पानी को समानुपात से मिलाने पर जो बंध होता है वह भी स्थूल पुद्गल बंध है। इसी प्रकार घर बनाने में जो गारा एवं ईंट, पत्थर का संयोग होता है वह भी पुद्गल बंध है। मिट्टी में पानी डालकर जो ईंट बनाते हैं वह भी पुद्गल बंध है। अणु-अणु, स्कंध-स्कंध एवं अणु-स्कंध में भी बंध होता है। कार्माण-वर्गणा का जीव के साथ जो संश्लेष संबंध होता है वह भी बंध है। विशेष जिज्ञासु बंध प्रकरण को जानने के लिए भेरे "कर्म का धार्मिक वैज्ञानिक विश्लेषण" एवं "स्वतंत्रता के सूत्र" का अध्ययन करें।

(3) सूक्ष्मत्व : सूक्ष्मत्व के दो भेद है - 1. अन्त्य 2. आपेक्षित। परमाणुओं में अन्त्य सूक्ष्मत्व है तथा बेल, आंबला और बेर आदि में आपेक्षित सूक्ष्मत्व है।

(4) स्थूलत्व : स्थूलत्व भी दो प्रकार का है- 1. अन्त्य, 2. अपेक्षित। जगव्यापी महास्कंध में अन्त्य स्थूलत्व है, तथा बेर, आंबला और बेल आदि में आपेक्षित स्थूलत्व है।

(5) संस्थान : संस्थान का अर्थ आकृति (आकार) है। इसके दो भेद है- 1. इत्थंलक्षण 2. अनित्थं लक्षण। जिसके विषय में यह संस्थान इस प्रकार का है यह निर्देश किया जा सके वह इत्थंलक्षण संस्थान है। वृत्त, त्रिकोण, चतुष्कोण, आयत और परिमण्डल आदि से सब इत्थंलक्षण संस्थान है तथा इसके अतिरिक्त मेघ आदि के आकार जो कि अनेक प्रकार के हैं और जिनके विषय में यह इस प्रकार का है यह नहीं कहा जा सकता वह अनित्थंलक्षण संस्थान है।

(6) भेद : भेद के छह भेद हैं- 1. उत्कर 2. चूर्ण 3. खण्ड 4. चूर्णिका 5. प्रतर 6. अणुचटन। करोत आदि से जो लकड़ी को चीरा जाता है वह उत्कर नामका भेद है। जौ और गेहूँ आदि का जो चूर्ण और कनक आदि बनता है वह चूर्ण नामका भेद है। घट आदि के जो कपाल और शर्करा आदि टुकड़े होते हैं वह "खण्ड" नामका भेद हैं। उडद और मूंग आदि का जो खण्ड किया जाता है वह चूर्णिका नाम का भेद हैं। मेघ के जो अलग अलग पटल आदि होते हैं वह "प्रतर" नामका भेद है। तपाये हुए लोहे के गोले आदि को घन आदि से पीटने पर जो स्फुलिंगे निकलते हैं वह "अणुचटन" नामका भेद है।

(7) अंधकार : जिससे दृष्टि में प्रतिबंध होता है और जो प्रकाश का विरोधी

है वह "तम" कहलाता है। अंधकार कोई अवास्तविक शून्य वस्तु नहीं है परंतु यह प्रकाश का विरोधी एक पौदलिक पर्याय है। इस अंधकार में भी अनंतानंत परमाणु रूप स्कंध का सद्भाव है। उदाहरण के लिए जैसे दीपक-जल रहा है उस समय उसके आस-पास का योग्य वातावरण प्रकाशित रहता है क्योंकि उस समय दीपक के प्रकाश के कारण आस-पास में व्याप्त स्कंध प्रकाशरूप में परिवर्तित हो जाता है परंतु दीपक बंद होते ही प्रकाशरूप स्कंध अंधकाररूप स्कंध में परिवर्तित हो जाता है।

(8) छाया : प्रकाश को रोकने वाले पदार्थों के निमित्त से जो पैदा होती है वह "छाया" कहलाती है। उसके दो भेद हैं- एक तो वर्णादि के विकार रूप से परिणत हुई और दूसरी प्रतिबिम्ब रूप। प्रकाश के विपरीत दिशा में स्थूल अपारदर्शी स्कंध के कारण स्कंध की छाया पड़ती है। जल में योग्य किनारे स्थित स्थूल वस्तु का प्रतिबिंब पड़ता है। इसी प्रकार दर्पण में भी प्रतिबिम्ब पड़ता है। कैमरे में छाया रूप प्रतिबिंब पड़ता है यह रंगीन कैमरे में रंगीन एवं व्हाइट-ब्लैक कैमरे में व्हाइट ब्लैक पड़ता है इसलिए इसे छायाचित्र कहते हैं। इस सिद्धांत से ही फोटो, चलचित्र, सिनेमा (विडियो कैसेट) आदि बनते हैं।

(9) आतप : जो सूर्य के निमित्त से उष्ण प्रकाश होता है उसे "आतप" कहते हैं। विज्ञान के अनुसार मुख्यतः फोटोन कणों का समूह प्रकाश है।

(10) उद्योत : चंद्र, चंद्रकांत, मणि और जुगनू से जो उष्णता रहित शीतल स्निग्ध प्रकाश निकलता है उसे "उद्योत" कहते हैं। गोम्मट्टसार कर्मकाण्ड में आताप एवं उद्योत की परिभाषा दी गई है यथा-

मूलुणहपहा अग्गी आदावो होदि उण्हसहियपहा।

आइच्चे तेरिच्चे उण्हूणपहा हु उज्जोओ॥३३॥

आग के मूल और प्रभा दोनों ही उष्ण रहते हैं। इस कारण उसके स्पर्श नामकर्म के उष्ण स्पर्श नामकर्म का उदय जानना और जिसकी केवल प्रभा किरणों के फैलाव ही उष्ण हो उसको आताप कहते हैं। इस आताप नामकर्म का उदय सूर्य के बिंब / विमान में उत्पन्न हुए बादर पर्याप्त पृथ्वीकाय के तिर्यच जीवों को समझना तथा जिसकी प्रभा भी उष्णता रहित हो उसको नियम से "उद्योत" जानना।

आधुनिक विज्ञान के अनुसार सूर्य 8 लाख 80 हजार मील व्यास वाला एक उतप्त गैस का पिण्ड है। इसमें हर समय अनेक अणुबम विस्फोट होने में जो ऊर्जा

निकलती है उतना प्रकाश निकलता है। कुल ज्ञात 107 तत्वों में से पचास तत्व सूर्य के वायुमंडल में गैसों के रूप में उपस्थित पाए गए हैं। हाइड्रोजन, हीलियम, ऑक्सीजन, मैग्नीशियम, लोहा, सिलिकान, जिंक, पोटेशियम, कैल्सियम, एल्युमिनियम, तांबा, निकल, क्रोमियम, कोबाल्ट आदि। सूर्य के केंद्र में होनेवाली क्रियाओं (फ्युजन रिएक्शन) के लिए हाइड्रोजन ईंधन का काम करती है। सूर्य की बाहरी सतह का तापमान लगभग 5500 डिग्री सेल्सियस और केंद्र का लगभग 20 अरब डिग्री सेल्सियस माना गया है। सूर्य ताप के रूप में शक्ति उत्पन्न करने में अपने कुल पदार्थ का चार अरब टन प्रति सैकेंड खर्च करता है। सूर्य से पृथ्वी के एक वर्ग मील को 46,40,400 हार्स पावर और पूरी पृथ्वी को तीन लाख तीस हजार हार्स पावर शक्ति ताप के रूप में मिलती है।

चंद्र एक उपग्रह है। सूर्य तो एक नक्षत्र होने के कारण एवं उष्ण गैसों का पिण्ड होने के कारण वह स्वप्रकाशी है किंतु चंद्र एक ठंडा उपग्रह होने के कारण इसमें स्व प्रकाश नहीं है परंतु सूर्य से प्रकाशित होने के कारण पर प्रकाशी है। अभी तक जैन धर्म एवं विज्ञान के इस सिद्धांत में जो अंतर है उसका पूर्ण निराकरण एवं समन्वय नहीं हो पाया है। यह एक शोध का विषय है। इसका कुछ वर्णन भी अपनी कृति "विश्व विज्ञान रहस्य" में किया है। जिज्ञासुओं के लिए अवलोकनीय है।

संपूर्ण भौतिक विश्व की संरचना पुद्गल से हुई है। दृश्यमान समस्त विश्व पौद्गलिक ही है। संसारी जीव के लिए पुद्गल की आवश्यकता सर्वोपरि है। अनादि काल से जीव एवं पुद्गल का संबंध होने के कारण संसारी जीव के शरीर, इन्द्रियाँ एवं मन यहाँ तक कि अशुद्ध भाव भी पुद्गल से जायमान हैं, प्रभावित हैं। आचार्य उमास्वामी ने भी कहा है। यथा-

शरीरवाङ्मनः प्राणपानाः पुद्गलानाम् ॥१९॥

शरीर वाङ्मनस्राण - अपानाः जीवानां पुद्गलानां उपकारः

शरीर, वचन, मन और प्राणापान यह पुद्गलों का उपकार है।

इस सूत्र में संसारी जीवों के लिये पुद्गल का क्या-क्या उपकार है उसका वर्णन किया है। संसारी जीवों के पाँचों शरीर वचन, मन श्वासोच्छ्वास पुद्गल से बनते हैं अर्थात् शरीर आदि पुद्गल स्वरूप हैं। गोम्मट्टसार जीवकाण्ड में विश्व में स्थित 23 पौद्गलिक वर्गणाओं में से किन-किन वर्गणाओं से उपरोक्त शरीर आदि बनते हैं उसका वर्णन निम्न प्रकार किया है-

आहारवग्गणादो तिण्णि शरीराणि होति उरस्सासो ।

णिरस्सासो वि ये तेजोवग्गणखंधादु तेजंगं ॥

(607 गो.स. पृ. 272)

तेईस जाति की वर्गणों में से आहारवर्गणा के द्वारा औदारिक, वैक्रियक, आहारक ये तीन शरीर और श्वासोच्छ्वास होते हैं तथा तेजोवर्गणा रूप स्कंध के द्वारा तैजस शरीर बनता है।

भासमणवग्गणादो कमेण भासा मणं च कम्मादो ।

अट्टवहकम्मदव्वं होदि त्ति जिणेहिं णिदिट्ठं ॥608

भाषा वर्गणा के द्वारा चार प्रकार का वचन, मनोवर्गणा के द्वारा हृदय स्थान में अष्ट दल कमल के आकार का द्रव्यमान तथा कार्माण वर्गणा के द्वारा आठ प्रकार के कर्म बनते हैं ऐसा जिनेंद्र देव ने कहा है।

सुखदुःखजीवितमरणोपग्रहाश्च । (20 पृ. 302)

जीवानां सुख-दुःख जीवित-मरण-उपग्रहाश्च- पुद्गलानामुपकारो भवति ।

सुख-दुःख जीवित-मरण ये भी पुद्गलों के उपकार है।

19 नंबर सूत्र में बताया गया है कि परिणाम विशेष से गृहीत पुद्गल जैसे शरीर, वचन, मन और श्वासोच्छ्वास चतुष्टय क्रम से गमन व्यवहरण, चिंतवन और श्वासोच्छ्वास रूप से जीव का उपकार करते हैं वैसे सुख आदि भी पुद्गलकृत उपकार हैं उसको बताने के लिए इस सूत्र में कहते हैं कि सुख, दुःख, जीवन-मरण भी पुद्गल कृत उपकार है।

उपर्युक्त क्रिया-कलापों के अतिरिक्त पुद्गल के और भी विभिन्न क्रिया कलाप हैं। वर्तमान वैज्ञानिक चमत्कार अधिकांशतः पौद्गलिक चमत्कार ही हैं। बैलगाड़ी से लेकर जेट-विमान तक, लकड़ी की पेटी से लेकर सुपर कम्प्यूटर तक, घी के दीपक से लेकर विद्युत प्रकाश तक, लाठी से लेकर अणुबम तक, चश्मा से लेकर शक्तिशाली दूरबीन एवं सूक्ष्मदर्शी यंत्र तक पौद्गलिक ही हैं। इसके साथ-साथ आकुंचन (सिकुड़ना) प्रसारण (फैलना) दूध-दही, भोजन, पानी, वस्त्र, वायु मिट्टी औषधि आदि पुद्गल की विभिन्न पर्यायें हैं।

.....

.....

अध्याय-4

द्रव्यों की प्रदेश संख्या तथा विस्तार

बहुप्रदेशी एवं एक प्रदेशी द्रव्य

जीवा पोग्गलकाया धम्माधम्मा पुणो य आगासं ।

सपदेसेहिं असंखादा णत्थि पेदसत्ति कालस्स ॥(135)

The Souls, Material bodies, principles of motion and rest, and space all these possess innumerable space-points, but time has no space-points.

काल द्रव्य को छोड़कर जीव आदि पांच द्रव्यों के अस्तिकाचपना है ऐसा व्याख्यान करते हैं :- (जीवो पोग्गलकाया) अनन्तानंत जीव और अनंतानन्त पुद्गल (धम्माधम्मा) एक धर्म द्रव्य, एक अधर्म द्रव्य (पुणोय आगासं) और एक आकाश द्रव्य (देसेहिं असंखादा) अपने प्रदेशों की गणना ही अपेक्षा संख्या रहित है, (कालस्स णत्थि पेदसत्ति) कालद्रव्य के बहुत प्रदेश नहीं है। यहाँ पर असंख्यात प्रदेश-शब्द से बहु प्रदेशी ग्रहण करना चाहिए। वह यहाँ यथा संभव घटित कर लेना चाहिए। हर एक जीव संसार की अवस्था में व्यवहार नय से अपने प्रदेशों में संकोच विस्तार होने के कारण दीपक के प्रकाश की तरह अपने प्रदेशों की संख्या में कमती व बढ़ती न होता हुआ शरीर के प्रमाण आकार रहता है तो भी निश्चय से लोकाकाश के बराबर असंख्यात प्रदेश वाला है। धर्म और अधर्म सदा ही स्थित हैं उनके प्रदेश लोकाकाश के बराबर असंख्यात हैं। स्कंध अवस्था में परिणमन किये हुए पुद्गलों के संख्यात, असंख्यात और अनन्त प्रदेश होते हैं, किंतु पुद्गल के व्याख्यान में प्रवेश शब्द से परमाणु ग्रहण करने योग्य हैं, क्षेत्र के प्रदेश नहीं क्योंकि पुद्गलों का स्थान अनन्त प्रदेश वाला क्षेत्र नहीं है। (सर्व पुद्गल असंख्यात परमाणु प्रदेशवाले लोकाकाश में हैं) उनके स्कन्ध अनेक जाति के बनते हैं संख्यात परमाणुओं के असंख्यात परमाणुओं के तथा अनन्त परमाणुओं के स्कंध बनते हैं। वे सूक्ष्म परिणमन वाले भी होते हैं इससे लोकाकाश में सब रह सकते हैं। एक पुद्गल के अविभागी परमाणु में प्रगट रूप से एक प्रदेशपना है, मात्र शक्ति रूप से उपचार से बहु प्रदेशीपना है। (क्योंकि वे पस्पर मिल सकते हैं) आकाश द्रव्य के अनंत

प्रदेश हैं। काल द्रव्य के बहुत प्रदेश नहीं हैं। हर एक कालाणु काल द्रव्य है तो एक प्रदेश मात्र है। कालाणुओं में परमाणुओं की तरह परस्पर संबंध करके स्कंध की अवस्था में बदलने की शक्ति नहीं है।

समीक्षा— विश्व में जो मूलभूत छ द्रव्य हैं। उनमें से केवल एक काल द्रव्य के अनेक प्रदेश आदि प्रदेश नहीं हैं बल्कि एक-एक काल द्रव्य के एक-एक ही प्रदेश होते हैं दो आदि प्रदेश नहीं होते हैं। इसलिये लोकाकाश प्रमाण असंख्यात काल द्रव्य होते हैं और प्रदेश भी उतने ही होते हैं। इसलिये काल द्रव्य को अनास्तिकाय कहा है। एक जीव द्रव्य के असंख्यात प्रदेश होते हैं और यह असंख्यात प्रदेश लोकाकाश के जितने प्रदेश होते हैं उतने होते हैं। इतने ही असंख्यात प्रदेश धर्म द्रव्य, अधर्म द्रव्य के होते हैं। आकाश द्रव्य के अनंतानंत प्रदेश होते हैं। शुद्ध पुद्गल की अपेक्षा परमाणु एक प्रदेशी है परंतु स्कंध की अपेक्षा पुद्गल संख्यात, असंख्यात, अनंतानंत प्रदेशी होते हैं।

अस्तित्व एवं काय की परिभाषा

संति जदो तेणेदे अत्थीत्ति भणंति जिणवरा जम्हा।

काया इव बहुदेसा तम्हा काया य अत्थिकाय य ॥(24)

पूर्वोक्त जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म तथा आकाश ये पाँचों द्रव्य विद्यमान हैं इसलिये जिनेश्वर इनको 'अस्ति' हैं ऐसा कहते हैं और ये काय के समान बहु प्रदेशों का धारणा करते हैं इसलिये इनको 'काय' कहते हैं। अस्ति तथा काय दोनों को मिलाने से ये पाँचों 'अस्तिकाय' होते हैं। काय का अर्थ बहुप्रदेशी है। अस्ति का अर्थ होना / भाववान् / अस्तिवान् / विद्यमान् / वर्तमान / उपलब्ध / स्थितिवान् आदि है। इसलिये अस्तिकाय का अर्थ हुआ अस्ति + काय जो अस्तित्ववान् होकर भी बहुप्रदेशी है। धनंजय नाममाला के अनुसार कायकी व्युत्पत्तिअर्थ चीयते इति कायः जो चयन करे/ संग्रह करे उसे काय कहते हैं। इस परिभाषानुसार धर्मादि पांच द्रव्य काय हैं क्योंकि वे अनेक प्रदेशों का चयन / संग्रह करते हैं अर्थात् अनेक प्रदेशवान् हैं।

अब इन पाँचों के संज्ञा, लक्षण तथा प्रयोजन आदि से यद्यपि परस्पर भेद है तथापि अस्तित्व के साथ ही अभेद है, यह दर्शाते हैं— जैसे शुद्ध जीवास्तिकाय में सिद्धत्व लक्षण शुद्ध-द्रव्य-व्यंजन पर्यायें हैं, केवलज्ञान आदि विशेष गुण है, तथापि अस्तित्व, वस्तुत्व और अगुरुलघुत्व आदि सामान्य गुण हैं। और जैसे मुक्ति

वशा में अव्याबाध अर्थात् बाधारहित अनंत सुख आदि अनन्त गुणों की व्यक्ति प्रकृता रूप कार्य समयसार का उत्पाद, राग आदि विभावों से शून्य परम स्वस्थ स्वरूप कारण समयसार का व्यय, नाश और इन दोनों के अर्थात् उत्पाद तथा व्यय के आधारभूत परमात्म रूप जो द्रव्य है उस रूप से ध्रौव्य स्थिरत्व है। इस प्रकार पूर्वकथित लक्षणयुक्त गुण तथा पर्यायों से और उत्पाद, व्यय तथा ध्रौव्य के साथ मुक्त अवस्था में संज्ञा, लक्षण तथा प्रयोजन आदि का भेद होने पर भी सत्तारूप और प्रदेशरूप से किसी का किसी के साथ भेद नहीं है। क्योंकि जीवों की मुक्ति अवस्था में गुण, द्रव्य तथा पर्यायों की और उत्पाद, व्यय तथा ध्रौव्य रूप लक्षणों की विद्यमानता (सत्ता) सिद्ध होती है और गुण, पर्याय, उत्पाद, व्यय तथा ध्रौव्य की सत्ता के अस्तित्व से मुक्त आत्मा जो है वह सिद्ध करता है। इस प्रकार गुण पर्याय आदि मुक्त आत्मा गुण पर्याय की सत्ता को परस्पर सिद्ध करते हैं। अब इनके कायत्व का निरूपण करते हैं— बहुत से प्रदेशों में व्याप्त होकर के स्थिति को देखकर जैसे शरीर को कायत्व कहते हैं। अर्थात् जैसे शरीर में अधिक प्रदेश होने से शरीर को 'काय' कहते हैं। उसी प्रकार अनन्त ज्ञान आदि गुणों के आधारभूत जो लोकाकाश के प्रमाण असंख्यात शुद्ध प्रदेश हैं उनके समूह, संघात अथवा मेल को देख के, मुक्त जीव में भी कायत्व का व्यवहार अथवा कथन होता है। जैसे शुद्ध गुण, पर्यायों से तथा उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य लक्षण से सहित रहने वाले मुक्त आत्मा के निश्चय नय से सत्ता रूप से अभेद दर्शाया गया है, ऐसे ही संसारी जीवों में तथा पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल द्रव्यों में भी यथा संभव परस्पर अभेद देख लेना चाहिये। और कालद्रव्य को छोड़कर अन्य सब द्रव्यों के कायत्व रूप से भी अभेद है।

द्रव्यो की प्रदेश संख्या

होति असंखा जीवे धम्माधम्मे अणंत आयासे।

मुत्ते तिविह पदेसा कालास्सेगो ण तेण सो काओ ॥(25)

जीव, धर्म तथा अधर्म द्रव्य में असंख्यात प्रदेश हैं और आकाश में अनन्त हैं। मूर्त पुद्गल में संख्यात, असंख्यात तथा अनन्त प्रदेश हैं और काल द्रव्य के एक-एक ही प्रदेश है इसलिए काल काय नहीं है।

गाथा 35 में अस्तिकाय एवं अनास्तिकाय का निर्देश किया गया एवं गाथा

2.4 में दोनों की परिभाषा ही दी गई है। परंतु यह नहीं बताया था कि कौन से द्रव्य के कितने प्रदेश हैं। इस गाथा में प्रत्येक द्रव्य की प्रदेश संख्याओं का वर्णन किया गया है। तत्त्वार्थ सूत्र में भी द्रव्यों के प्रदेश संख्या इसी प्रकार बतायी गयी है। यथा—

**असंख्येयाः प्रदेशाधर्माधर्मैकजीवानाम् ।
धर्म, अधर्म, एकजीवानामसंख्याः प्रदेशा भवन्ति ॥(8)**

धर्म, अधर्म और एक जीव स्वतंत्र रूप से एक-एक अखण्ड द्रव्य होते हुए भी उनके प्रदेश असंख्यात-असंख्यात हैं। धर्म द्रव्य के असंख्यात, अधर्म द्रव्य के असंख्यात और एक जीव के भी असंख्यात प्रदेश हैं।

संख्या को जिस गणना ने अतिक्रान्त कर लिया है उसे असंख्यात कहते हैं अर्थात् जो गिनती की सीमा को पार कर गये हैं अथवा जो किसी सामान्य असर्वज्ञ के द्वारा गिने नहीं जाते हैं उनको असंख्यात कहते हैं। यहाँ सर्वप्रथम जान लेना चाहिए कि प्रदेश किसे कहते हैं? क्योंकि यहाँ प्रदेश गणना के लिए इकाई एक प्रदेश है। प्रदेश की परिभाषा निम्न प्रकार है—

जावदियं आयासं अविभागी पुग्लगालाणुवद्वद्धं तं खु पदेसं ।

जितना आकाश अविभागी पुद्गल परमाणु से रोका जाता है उसको प्रदेश कहते हैं। राजवार्तिक में कहा है 'प्रदिश्यते प्रतिपाद्यन्त इति प्रदेशः जो क्षेत्र के परिणाम को बताते है उसे प्रदेश कहते हैं—

“द्रव्य परमाणुः स यावति क्षेत्रेऽवतिष्ठते स प्रदेश इति व्यवह्रियते।”

द्रव्य परमाणु जितने क्षेत्र में रहता है उसको प्रदेश कहते हैं जैसे आकाश अखण्ड अभेद होते हुए भी लोकाकाश एवं अलोकाकाश रूप से इसके दो भेद हो जाते हैं वैसे ही लोकाकाश के भी अनेक भेद-प्रभेद हो जाते हैं—

आकाशस्यानन्ताः । (9) स्व. सू.

आकाशस्यानन्ताः प्रदेशाः सन्ति ।

आकाश के अनन्त प्रदेश हैं।

छहों द्रव्यों में सबसे विशालतम द्रव्य आकाश है। यह द्रव्य सर्वव्यापी है। इसके प्रदेश अनन्त है। जिसका अन्त / अवसान नहीं है उसको अनन्त कहते हैं। लोकाकाश, आकाश का एक बहुत छोटा भाग है और इसके असंख्यात प्रदेश हैं। अलोकाकाश संपूर्ण दिशाओं में अनन्त तक फैला हुआ।

संख्येयासंख्येयाश्च पुद्गलानाम् ॥ (10)

संख्येयाः असंख्येयाश्च (अनन्ताः अनन्तानन्ताः) पुद्गलानाम् प्रदेशा भवन्ति। पुद्गलों के संख्यात, असंख्यात और अनन्त प्रदेश हैं।

मुख्य रूप से पुद्गलों के दो भेद हैं 1. अणु 2. स्कन्ध । अणु सर्वदा एक प्रदेशी होता है। परंतु स्कन्ध संख्यात, असंख्यात एवं अनन्त प्रदेशी भी होता है।

काल द्रव्य एक ही अविभाज्य प्रदेशी होता है। शुद्ध पुद्गल भी परमाणु की अपेक्षा एक प्रदेशी होते हुए भी उसमें स्निग्धत्व-रुक्षत्व गुण होते हैं जिसके कारण परमाणु भविष्य में अन्य परमाणु या स्कंध से मिलकर बहुप्रदेशी हो जाता है। इसलिये उपचार से परमाणु को भी बहुप्रदेशी कहते हैं। परंतु कालाणु अमूर्तिक होने के कारण उसमें स्निग्धत्व, रुक्षत्व गुण नहीं है जिससे कालाणु कभी भी अन्य कालाणु से बन्ध रूप परिणमन नहीं कर सकता है इसलिए कालाणु द्रव्यरूप में या उपचार रूप में शक्तिरूप में भी बहुप्रदेशी नहीं है।

पुद्गल द्रव्य में जो संख्यात, असंख्यात एवं अनन्त प्रदेश होते हैं, यह परमाणु के समूह रूप से हैं न कि आकाश प्रदेश की अपेक्षा हैं। क्योंकि लोकाकाश के प्रदेश ही असंख्यात हैं और असंख्यात प्रदेश में ही अन्य धर्म, अधर्म, जीव, काल, द्रव्य के साथ-साथ संपूर्ण पुद्गल परमाणु एवं स्कंध भी रहते हैं। इसलिये क्षेत्र की अपेक्षा संख्यात एवं असंख्यात प्रदेश हो सकते हैं। परंतु अनन्त प्रदेश नहीं हो सकते हैं।

“ण तेण सो काओ” इसी हेतु से अर्थात् एक प्रदेशी होने से वह कालद्रव्य प्राय नहीं है। अब काल के एक प्रदेशी होने में युक्ति कहते हैं। जैसे अंतिम शरीर से किंचित न्यून प्रमाण के धारक सिद्धत्व पर्याय का उपादान कारणभूत जो शुद्ध आत्म द्रव्य है वह सिद्धत्व पर्याय के प्रमाण ही है अथवा जैसे मनुष्य देव आदि पर्यायों का उपादान कारणभूत जो संसारी द्रव्य है वह उस मनुष्य देवादि पर्याय के प्रमाण ही है, उसी प्रकार कालद्रव्य भी समयरूप जो काल की पर्याय है उसका विभाग से उपादान कारण है तथा अविभाग से एक प्रदेश ही होता है अथवा गन्ध गति से गमन करते हुए पुद्गल परमाणु के एक आकाश के प्रदेश पर्यन्त ही कालद्रव्य गति का सहकारी कारण होता है। इस कारण जाना जाता है कि यह कालद्रव्य भी एक ही प्रदेश का धारक है।

शंका— पुद्गल परमाणु की गति में सहकारी कारण तो धर्मद्रव्य विद्यमान है

ही इसमें कालद्रव्य का क्या प्रयोजन है ?

समाधान— क्योंकि, धर्म द्रव्य के विद्यमान रहते भी मत्स्यो की गति में जल के समान तथा मनुष्यों की गति में गाड़ी पर बैठना आदि के समान पुद्गल की गति में बहुत से भी सहकारी कारण होते हैं।

शंका— “कालद्रव्य पुद्गलों की गति में सहकारी कारण है” यह कहाँ-कहाँ हुआ है ?

समाधान— श्री कुंदकुंद आचार्य देव ने पंचास्तिकाय नामक प्राभृत में “पुद्गलकरणा जीवा खंदा खलु कालकरणा दु” ऐसा कहा है। इसका अर्थ कहते हैं कि धर्मद्रव्य के विद्यमान होते हुए भी जीवों की गति में कर्म- नो कर्म रूप पुद्गल सहकारी कारण होते हैं और अणु तथा स्कंध इन भेदों से भेद को प्राप्त हुए पुद्गलों के गमन में कालद्रव्य सहकारी कारण होता है।

परमाणु की परिभाषा

एक प्रदेशी पुद्गल को अस्तिकाय कहने का कारण

एयपदेसो वि अणुणाणाखंधप्पदेसदो होदि।

बहुदेसो उवयारा तेण य काओ भणंति सब्बण्हु ॥(26)

एक प्रदेश का धारक भी परमाणु अनेक स्कन्धरूप बहुत प्रदेशों से बहुप्रदेशी होता है। इस कारण सर्वज्ञ देव उपचार से पुद्गल परमाणु को “काय” कहते हैं।

वस्तुतः शुद्ध पुद्गल अणु रूप ही होता है। स्कंध तो पुद्गल की अशुद्ध पर्याय है। तथापि पुद्गल में जो पूरण, गलन स्वभाव एवं स्निग्ध, रुक्षत्व गुण होते हैं जिसके कारण पुद्गल अंतरंग एवं बहिरंग कारणों को प्राप्त करके द्वि अणुक आदि स्कंध रूप बहुप्रदेशी बन सकता है। इस प्रकार की योग्यता, शक्ति एवं संभावना के कारण शुद्ध पुद्गल अणु को भी उपचार से अर्थात् व्यवहार नय से बहु प्रदेशी कहा गया है। अणु अन्य परमाणु से रहित अविभाज्य एक ही प्रदेशी होता है ऐसा उमास्वामी आचार्य ने तत्वार्थ सूत्र में कहा है। यथा-

नाणो : (11)

नाणोः प्रदेशा भवन्ति।

परमाणु के प्रदेश नहीं होते।

दसवें सूत्र में कहा गया कि पुद्गलों के संख्यात, असंख्यात और अनंत प्रदेश

होते हैं। यह सामान्य कथन है। परंतु यहां पर विशेष कथन किया गया है कि अणु पुद्गल होते हुए भी अणु के प्रदेश नहीं होते हैं। प्रदेश नहीं होते इसका मतलब ये नहीं कि अणु पूर्ण रूप से प्रदेश से रहित है। परंतु परमाणु एक प्रदेश मात्र है तथा द्वि आदि प्रदेश से रहित है। जैसे रेखागणित में बिंदु सत्तावन होते हुए भी अस्तित्ववान होते हुए भी इसकी लंबाई, चौड़ाई, मोटाई नहीं है। जिस प्रकार एक आकाश प्रदेश में भेद नहीं होने से वह अप्रदेशी माना गया उसी प्रकार अणु स्वयं एक प्रदेश रूप है इसलिए उसमें प्रदेश भेद नहीं होता है। दूसरे अणु से अल्प परिणाम नहीं पाया जाता। ऐसी कोई अन्य वस्तु नहीं जो परमाणु से छोटी हो जिससे इसके प्रदेश भेद को प्राप्त होवें।

इस परमाणु को किसी भी कृत्रिम प्रक्रिया से या स्वयं किसी प्राकृतिक प्रक्रिया से खण्डित नहीं किया जा सकता है अथवा खण्डित नहीं होता है। एक शक्तिशाली बम पहाड़ को विध्वंस कर सकता है। परंतु ऐसे कई शक्तिशाली बम भी अणु को खण्डित नहीं कर सकते हैं। यह परमाणु न अग्नि से जलता है, न पानी से भीला होता है, न वायु से उड़ता है, न चक्षु से दिखाई देता है और न ही सूक्ष्मदर्शी यंत्र से दिखाई देता है।

परमाणु जब मंद गति में गमन करता है तब एक समय में एक प्रदेश गमन करता है और जब तीव्र गति से गमन करता है, तब एक समय में चौदह राजू गमन कर सकता है। मध्यम गति में अनेक विकल्प हैं। अणु जब गमन करता है तब उसकी गति को कोई भी वस्तु या यंत्रादि भी नहीं रोक सकते हैं।

विज्ञान जिसको वर्तमान में अणु मानता है वह जैन सिद्धांत की अपेक्षा स्थूल स्कंध ही है, जिसमें अनंतानन्त परमाणु मिले हुए हैं। वैज्ञानिक लोग परमाणु को अविभाज्य मानते हुए भी उनेक द्वारा माना हुआ परमाणु पुनः पुनः अनेक विभाग में विभाजित होता जा रहा है। पहले न्यूट्रॉन, इलेक्ट्रॉन, प्रोटॉन के समूह को अणु मानते थे। परंतु यह भी परमाणु नहीं हो सकता क्योंकि स्पष्ट रूप से ये तीनों अलग-अलग हैं इसकी लंबाई भी है और इसका वजन भी है। इतना ही नहीं आगे जाकर वह खंडित भी हो गया और उस खण्डित भाग को क्वार्क कहते हैं। यह क्वार्क भी अणु नहीं है। यह क्वार्क भी अनेक परमाणु के समूह से बना स्कंध है। परमाणु का विशेष वर्णन प्राचीन जैनाचार्यों ने निम्न प्रकार से किया है-

आदिमध्यान्तनिर्मुक्तं निर्विभागमतीन्द्रियम् ।
मूर्तमप्यप्रदेशं च परमाणुं प्रचक्ष्यते ॥ (32)

(हरिवंशपुराण पर्व, 7)

जो आदि, मध्य और अंत से रहित है. निर्विभाग है, अतीन्द्रिय है और मूर्त होने पर भी अप्रदेश-अद्वितीयादिक प्रदेशों से रहित है उसे परमाणु कहते हैं।

एकदैक रसं वर्णं गंध स्पर्शावबाधकौ ।
दधत् स वर्ततेऽभेद्य शब्द हेतुरशब्दकः ॥ (33)

वह परमाणु एक काल में एक रस, एक वर्ण, एक गंध और परस्पर में बाधा नहीं करने वाले दो स्पर्शों को धारण करता है, अभेद्य है, शब्द का कारण है और स्वयं शब्द से रहित है।

आशंकया नार्थतत्त्वज्ञैर्नभोऽशानां समंततः ।
षट्केन युगपद्योगात्परमाणोः षडंशता ॥ (34)

पदार्थ के स्वरूप का जानने वाले लोगों को ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिए कि सब ओर से एक समय आकाश के छह अंशों के साथ संबंध होने से परमाणु में षडंशता है।

स्वल्पाकाशषडंशाश्च परमाणुश्च संघ्ताः ।
सप्तांशाः स्युकुतस्यतु स्यात्परमाणोः षडंशताः ॥ (35)

क्योंकि ऐसा मानने पर आकाश के छोटे-थोटे छह और एक परमाणु सब मिलकर सप्तमाँश हो जाते हैं। अब परमाणु में षडंशता कैसे हो सकती है?

वर्णगंधरसस्पर्शैः पूरणं गलनं च यत् ।

कुर्वन्ति स्कंधवत्तस्मात् पुद्गलाः परमाणवः ॥ (36)

क्योंकि परमाणु रूप, गंध, रस, और स्पर्श के द्वारा पूरण तथा गलन करते रहते हैं इसीलिए स्कंध के समान परमाणु पुद्गल द्रव्य है।

जैसे यह परमात्मा शुद्ध निश्चय नय से द्रव्यरूप से शुद्ध तथा एक है तथापि अनादि कर्मबंधन से वश से स्निग्ध तथा रुक्ष गुणों के स्थानापन्न (स्थान को प्राप्त) जो राग और द्वेष है उनसे परिणाम को प्राप्त होकर, व्यवहार से मनुष्य नारक आदि विभाव पर्याय रूप से अनेक प्रकार का होता है, ऐसे ही पुद्गल परमाणु भी यद्यपि स्वभाव से एक और शुद्ध है तथापि राग, द्वेष के स्थानभूत जो बंध

हेतु योग्य स्निग्ध, रुक्ष गुण है उनसे परिणामन को प्राप्त होकर द्रव्यणुक आदि स्कंध रूप जो विभाव पर्याय है उनसे अनेक प्रदेशों का धारक होता है। इसी हेतु से बहुप्रदेशतारूप कायत्व के कारण से पुद्गल परमाणु को सर्वज्ञ देव उपचार से काय कहते हैं। अब यहाँ पर यदि ऐसा किसी का मत हो कि जैसे द्रव्यरूप से एक भी पुद्गल परमाणु के द्रव्यणुक आदि स्कंध पर्याय रूप से बहुप्रदेशरूप कायत्व सिद्ध हुआ है ऐसे ही द्रव्यरूप से एक होने पर भी कालाणु के समय, घटिका आदि पर्यायों से कायत्व सिद्ध होता है। इस शंका का परिहार करते हैं कि स्निग्ध, रुक्ष गुण है, कारण जिसमें ऐसे बंध का कालद्रव्य में अभाव है इस कारण वह “काय” नहीं हो सकता। क्योंकि स्निग्ध रुक्षपना पुद्गल का ही धर्म है। इसलिए काल में स्निग्ध रुक्षत्व है नहीं और उनके बिना बंध नहीं होता और बंध के बिना काल में कायत्व नहीं सिद्ध होता है। कदाचित् कहो कि “अणु” यह पुद्गल की संज्ञा है। काल के ‘अणु’ संज्ञा कैसे हुई? तो इसका उत्तर सुनो— ‘अणु’ शब्द सूक्ष्म का वाचक है, जैसे परम अर्थात् प्रकर्ष (अधिकता) से जो अणु है सो परमाणु है। इस व्युत्पत्ति से परमाणु शब्द जो है वह अति सूक्ष्म पदार्थ को कहनेवाले हैं। और वह सूक्ष्म वाचक “अणु” शब्द निर्विभाग पुद्गल की विविक्षा में तो ‘पुद्गल’ को कहता है और अविभागी (विभाग रहित) कालद्रव्य के कहने की जब इच्छा होती है तब ‘कालाणु’ को कहता है।

महान व्यक्ति सीधे तथा क्षुद्र व्यक्ति वक्र होते हैं

टेढ़ी मेढ़ी रेखा अपनी वक्रता के कारण सीधी रेखा को स्वयं बार-बार काटती है। उसी प्रकार महान व्यक्ति रूपी सरल रेखा को सामान्य व्यक्ति रूपी टेढ़ी रेखा स्वयं काटती हुई भी वह मानता है कि उस महान व्यक्ति ने हमें काटा है। इसी कारण हर देश के महापुरुषों को ऐसे व्यक्तियों ने ही कष्ट दीया, अपमान किया, मृत्युदंड तक दिया है।

— आ. कनकनंदीजी गुरुदेव

अध्याय-5

लोकाकाश एवं अलोकाकाश (विश्व एवं प्रतिविश्व)

(Universe and antiuniverse)

लोगालोगेसु णभो धम्मधम्महिं आददो लोगो।

सेसे पडुच्च कालो जीवा पुण पोग्गला सेसा ॥ (136)

The sky or space pervaden loka and Aloka; Loka is occupied by the principle of motion and rest, by time which rests with the other two (viz. soul and matter) and by soul and matter.

(णभो) आकाश द्रव्य (लोकालोगेसु) लोक और अलोक रूप है (सेसे पडुच्च) शेष जीव पुद्गल को आश्रय करके (लोको धम्मधम्महिं आददो) लोक धर्म और अधर्म द्रव्य से व्याप्त है तथा (कालो) काल है। (पुण सेसा जीवा पुग्गला) और वे दो शेष द्रव्य जीव और पुद्गल है। लोकाकाश और अलोकाकाश दोनों का आधार एक आकाश द्रव्य है। इनमें से जीव पुद्गलों की अपेक्षा से धर्मास्तिकाय / अधर्मास्तिकाय है जिनसे यह लोकाकाश व्याप्त है। अर्थात् इस लोकाकाश में जीव और पुद्गल भरे हैं; उनही की गति और स्थिति के कारण रूप ये धर्म अधर्म भी लोक में है। काल भी इन जीव पुद्गलों की अपेक्षा करके लोक में है क्योंकि जीव पुद्गल की नई पुरानी अवस्था के होने से काल द्रव्य की समय घडी आदि पर्याय प्रगट होती हैं। तथा जीव पुद्गल तो इस लोक में है ही। यहाँ यह भाव है कि जैसे सिद्ध भगवान् यद्यपि लोकाकाश प्रमाण अपने शुद्ध असंख्यात प्रदेशों में है जो प्रदेश केवलज्ञान आदि गुणों के आधारभूत हैं तथा अपने-अपने स्वभाव में ठहरते हैं तथापि व्यवहार नय से मोक्षशिला पर ठहरते हैं, ऐसा आचार्य कहते हैं, तैसे सर्व पदार्थ यद्यपि निश्चय से अपने स्वरूप में ठहरते हैं तथापि व्यवहार नय से लोकाकाश में ठहरते हैं। यहाँ यद्यपि अनंत जीव द्रव्यों से अनंत गुणे पुद्गल हैं तथापि एक दीप के प्रकाश में जैसे बहुत से दीपकों के प्रकाश समा जाते हैं तैसे विशेष अवगाहन की शक्ति के योग से असंख्यात प्रदेशी लोक में ही सर्व द्रव्यों का स्थान विरोध रूप नहीं है।

प्रथम तो, आकाश लोक तथा अलोक में है, क्योंकि वह छह द्रव्यों के समवाय और असमवाय में बिना विभाग के रहता है। धर्म और अधर्म द्रव्य सर्वत्र लोक में है, क्योंकि उनके निमित्त से जिनकी गति और स्थिति होती है ऐसे जीव और पुद्गलों की गति या स्थिति लोक से बाहर नहीं होती, और न लोक के एक देश में होती है (अर्थात् लोक में सर्वत्र होती है) काल भी लोक में है, क्योंकि जीव और पुद्गलों के परिणामों के द्वारा (काल की) समयादि पर्यायें व्यक्ति (अभिव्यक्ति) होती हैं, और वह काल लोक के एक प्रदेश में है, क्योंकि वह अप्रदेशी है। जीव और पुद्गल तो युक्ति से ही लोक में हैं, क्योंकि लोक छह द्रव्यों का समवाय स्वरूप है। किंतु प्रदेशों का संकोच विस्तार होना जीव का धर्म होने के कारण, और बंध के हेतुभूत स्निग्ध रुक्ष गुण पुद्गल का धर्म होने के कारण जीव और पुद्गल का समस्त लोक में या उसके एक प्रदेश में रहने का (कोई) नियम नहीं है। काल जीव तथा पुद्गल एक द्रव्य की अपेक्षा से लोक के एक देश में रहते हैं। और अनेक द्रव्यों की अपेक्षा से अंजन चूर्ण (काजल) से भरी हुई डिबिया के न्यायानुसार समस्त लोक में ही हैं।

समीक्षा—आचार्यश्री ने इस गाथा में लोकाकाश एवं अलोकाकाश का वर्णन प्रमाण, सयुक्ति पूर्ण किया है। आकाश अनन्तानंत प्रदेशी वाला सर्वव्यापी द्रव्य होने के कारण आकाश लोक में भी है एवं अलोक में भी है। असंख्यात प्रदेशी लोकाकाश में जीव एवं पुद्गलों का गमनागमन एवं स्थिति होने से यह स्वतः सिद्ध होता है कि पूर्ण लोकाकाश में गमनागमन तथा स्थिति के कारणभूत धर्म द्रव्य एवं अधर्म द्रव्य व्याप्त हैं। लोकाकाश में काल द्रव्य भी है। क्योंकि जीव एवं पुद्गल में परिणमन परिलक्षित होता है। बिना कालद्रव्य परिणमन संभव नहीं है। इसलिये लोकाकाश में कालद्रव्य होना युक्तियुक्त है। इसके साथ-साथ दिन, रात ऋतु, अयन, वर्ष आदि व्यवहार काल निश्चय काल (काल द्रव्य) के बिना नहीं हो सकता है। अतएव व्यवहार काल से निश्चय काल की भी सिद्धि भी हो जाती है। पंचास्तिकाय में कहा भी है—

जीवा पुग्गलकाया आयासं अत्थिकाइया सेसा।

अमया अत्थित्तमया कारणभूदा हि लोगस्स ॥

जीवादि पांच अस्तिकाय हैं। इनको किसी पुरुष विशेष ने बनाया नहीं है। ये अपनी सत्तासे ही निर्वृत्त अथवा निष्पन्न हुए हैं अतः विद्यमान हैं। यह लोक इन

पांच अस्तिकायों का व कायरहित एक प्रदेशी काल द्रव्य का इस तरह छः द्रव्यों का समुदाय है। इस तरह जैसा कहा है— जीवादिषड् द्रव्याणां समवायो मेलापको लोक इति” तथा यह लोक उत्पाद, व्यय व ध्रौव्य स्वरूप है इसी से इस लोक का अस्तित्व देखा जाता है, क्योंकि कहा है “उत्पादव्यय ध्रौव्ययुक्तं सत् इति” तथा इस लोक ऊर्ध्व, मध्य अधो इन तीन अंशों को रखनेवाला अवयव सहित है इससे इसको बहुप्रदेशी या कायपना कहा गया है। मोक्षशास्त्र में उपर्युक्त विषय का विशद वर्णन निम्न प्रकार से किया गया है—

लोकाकाशेऽवगाहः। ((12) त.सू.पृ. 281)

These substances Dharma, Adharma, Jiva etc. exist only in Lokakasa.

इन धर्मादिक द्रव्यों का अवगाह लोकाकाश में है।

आकाश एक सर्वव्यापी अखण्ड द्रव्य होते हुए भी जिस आकाश प्रदेश में जीव आदि द्रव्य रहते हैं उसे लोकाकाश कहते हैं। उसको छोड़कर अन्य अवशेष आकाश को अलोकाकाश कहते हैं। द्रव्य संग्रह में कहा भी है—

धम्माऽधम्मा कालो पुग्गल जीवा य संति जावदिद्ये।

आयासे सो लोगो तत्तो परदो अलोगुत्तो ॥(20)

धर्म, अधर्म, काल, पुद्गल और जीव ये पांचों द्रव्य जितने आकाश में है वह तो लोकाकाश है। उसके आगे अलोकाकाश है।

प्रश्न— असंख्यात प्रदेश वाले लोकाकाश में अनंतानंत जीव हैं उनसे भी अनंतगुणे पुद्गल हैं। लोकाकाश के प्रदेशों के प्रमाण भिन्न-भिन्न कालाणु हैं तथा एक धर्म और एक अधर्म द्रव्य हैं ये सब किस तरह इस लोकाकाश में अवकाश पा लेते हैं ?

उत्तर— जैसे एक कोठरी में अनेक दीपों का प्रकाश व एक गूढ़नाग रस के गुटके से बहुत सा सुवर्ण व एक ऊँटनी के दूध के भरे घट में मधु का भरा घट व एक तहखाने में जय-जयकार शब्द व घंटा आदि का शब्द विशेष अवगाहन गुण के कारण अवकाश पाते हैं। वैसे असंख्यात प्रदेशी लोक में अनंतानंत जीवादि भी अवकाश पा सकते हैं।

धर्म द्रव्य, अधर्म द्रव्य, काल द्रव्य तथा जीव द्रव्य अमूर्तिक द्रव्य होने के कारण उसकी अवगाहना की कोई समस्या नहीं है, शेष रहा पुद्गल द्रव्य। पुद्गल द्रव्य में भी सूक्ष्मत्व

परिणमन—शक्ति होने के कारण एवं आकाश में अवगाहन शक्ति होने के कारण अनंत पुद्गल द्रव्य, असंख्यात प्रदेशवाले लोकाकाश में समावेश होकर रह जाते हैं। जैसे— एक अगरबत्ती को जलाने से उस अगरबत्ती के धुआँ से एक कमरा भर जाता है। इस धुएँ के परमाणु (स्कंध) उस छोटी सी अगरबत्ती में ही समाहित थे। अभी आधुनिक विज्ञान से सिद्ध हुआ कि कुछ नक्षत्र में ऐसी धातु है जिसका माचिस के बराबर टुकड़े का वजन 60 से लेकर 250 टन तक हो सकता है। इतना अधिक वजन होने का कारण वहाँ के परमाणु का बंधन अधिक घन स्वरूप से हुआ है। वैज्ञानिकों ने यह सिद्ध कर दिया है कि एक हाथी को पूर्ण रूप से दबा दिया जायेगा तब वह हाथी सूई के छेद से निकल जायेगा। इसका कारण यह है कि उस में मौजूद समस्त परमाणु समूह एक ही आकाश प्रदेश में अथवा एक परमाणु में (एक परमाणु के आकार) में अनंतानंत बंध विशेष से बंधकर इकट्ठे हो जाते हैं। इसलिये एक आकाश प्रदेश में एक से लेकर तीन व संख्यात असंख्यात, अनंत परमाणु समाहित हो सकते हैं। जब एक आकाश प्रदेश में अनंत परमाणु भी रह सकते हैं तो असंख्यात प्रदेश वाले लोकाकाश में अनंतानंत परमाणु क्यों नहीं रह सकते ? अर्थात् रह सकते हैं।

जीवापुग्गलकाया धम्मा धम्मा य लोगदोणणा।

तत्तो अणणमण्णं आयासं अंतवदिरित्तं ॥

(91) (पं.का.) पृ. 246

अंतत जीव, अनंत पुद्गल स्कंध, अणु, धर्म, अधर्म, द्रव्य और असंख्यात काल द्रव्य इस लोक से बाहर नहीं है इस लोकाकाश से जुदा नहीं हैं। लोकाकाश से बाहर शेष आकाश अंतरहित—अनंत है।

आगासं अवगासं गमणद्धिदि कारणेहिं ददि जदि।

उड्ढंगदिप्पधाणा सिद्धा चिद्धंति किध तत्थ ॥(92)

जो मात्र अवकाश का ही हेतु है ऐसा जो आकाश उसमें गति स्थिति हेतुत्व (भी) होने की शंका की जाये तो दोष आता है उसका यह कथन है।

यदि आकाश जिस प्रकार वह अवगाहना वालों को अवगाह हेतु है उसी प्रकार गति स्थिति वालों को गति, स्थिति हेतु भी हो तो सर्वोत्कृष्ट स्वाभाविक ऊर्ध्वगति से परिणत सिद्ध भगवन्त, बहिरंग-अंतरंग साधन रूप सामग्री होने पर भी क्यों (किसकारण) उसमें आकाश में स्थिर हों ?

सिद्ध भगवान् स्वभाव से ऊपर को गमन करते हैं। वे यदि आकाश के ही निमित्त कारण से जावें तो वे अनंत आकाश में जा सकते हैं, क्योंकि आकाश लोक से बाहर भी है। परंतु वे बाहर नहीं जाते हैं कारण यही है कि वहाँ धर्म द्रव्य नहीं है। जहाँ तक धर्म द्रव्य है वहीं गमन में सहकारीपना है।

जम्हा उवरिद्धाणं सिद्धाणं जिणवरेहिं पण्णत्तं।

तम्हा गमणद्धाणं आयासे जाण णत्थित्ति ॥ (93)

क्योंकि श्री जिनेन्द्रों ने सिद्धों का लोक के अग्रभाग में तिष्ठना कहा है इसलिये आकाश में गमन और स्थिति में सहकारीपना नहीं है ऐसा जानो। इसी से ही जाना जाता है कि, आकाश में गति और स्थिति का कारण पना नहीं है, किंतु धर्म और अधर्म ही गति और स्थिति का कारण है, यह अभिप्राय है।

जदि हवदि गमणहेदू आगासं ठाणकारणं तेसिं।

पसजदि अलोगहाणी लोगस्स य अंतपरिवुड्डी ॥ (92)

यदि आकाशगति व स्थिति में कारण हो तो लोकाकाश के बाहर भी आकाश की सत्ता है तब जीव और पुद्गलों का गमन अनंत आकाश में भी हो जावे इससे अलोकाकाश न रहे और लोक की सीमा बढ़ जावे लेकिन ऐसा नहीं है। इसी कारण से यह सिद्ध है कि आकाश गति और स्थिति के लिए कारण नहीं है।

धम्माधम्मागासाअपुधब्भूदा समाणपरिमाणा।

पुथगुवलद्धविसेसा करिंति एगत्तमण्णत्तं ॥ (96)

व्यवहार से धर्म, अधर्म व लोकाकाश एक समान असंख्यात प्रदेश को रखने वाले हैं इसलिये इनमें एकता है परंतु निश्चय से ये तीनों अपने-अपने स्वभाव में हैं, इससे अनेकता या भिन्नता है। जैसे- यह जीव पुद्गल आदि पांच द्रव्यों के साथ व अन्य जीवों के साथ एक क्षेत्र में अवगाह रूप रहने से व्यवहार से एकपने को बताता है, परंतु निश्चयनय से भिन्नपने को प्रकट करता है, क्योंकि यह जीव एक समय में सर्व पदार्थों में प्राप्त अनंत स्वभावों को प्रकाश करने वाले परम चैतन्य के विलास रूप अपने ज्ञान गुण से शोभायमान है। वैसे ही धर्म, अधर्म और लोकाकाश द्रव्य एक क्षेत्र में अवगाह रूप होने से अभिन्न है तथा समान प्रदेशों का परिणाम रखते हैं। इसलिये उपचरित असद्भूत व्यवहारनय से परस्पर एकता करते हैं, परंतु निश्चय नय से अपने-अपने गतिस्थिति व अवगाहन लक्षण

को रखने से नानापना या भिन्नपना करते हैं।

धर्मा धर्मयोः कृत्सने।

धर्माधर्मयोः कृत्सने लोकाकाशे अवगाहो भवति।

The Whole Universe or loka is the place of Dharma and Adharma Dravyas.

धर्म और अधर्म द्रव्य का अवगाह समग्र लोकाकाश में है। लोकाकाश के असंख्यात प्रदेश होते हैं। उस संपूर्ण लोकाकाश के प्रदेश में धर्म तथा अधर्म द्रव्य के प्रदेश व्याप्त होकर अर्थात् लोकाकाश के एक प्रदेश में धर्म द्रव्य के एक प्रदेश तथा अधर्म द्रव्य के एक प्रदेश रहते हैं। लोकाकाश में धर्म द्रव्य तथा अधर्म द्रव्य का अवस्थान जैसे चौकी के ऊपर पुस्तक है उस प्रकार नहीं है। परंतु जैसे दूध में घी, तिल में तेल, ईंधन में अग्नि रहती ही, उसी प्रकार धर्म एवं अधर्म द्रव्य में प्रदेश लोकाकाश के संपूर्ण प्रदेश में व्याप्त रहते हैं। आधुनिक विज्ञान में भी माना गया है कि ईथर तथा गुरुत्वाकर्षण शक्ति आकाश में व्याप्त होकर रहती है। इसलिए निरवशेष व्याप्ति का प्रदर्शन कराने के लिए सूत्र में “कृत्सन्” वचन का प्रयोग किया है। क्योंकि धर्म और अधर्म द्रव्य निरंतर सारे लोकाकाश में व्याप्त होकर रहते हैं।

प्रश्न- धर्म, अधर्म आदि द्रव्य के प्रदेश परस्पर अविरोध रूप से एक संस्थान में कैसे रहते हैं ?

उत्तर- अमूर्तिक होने से धर्म, अधर्म और आकाश के प्रदेशों में परस्पर विरोध नहीं है। जब मूर्तिमान जल, भस्म, रेत आदि पदार्थ बिना विरोध के एक स्थान में रह सकते हैं तब इन अमूर्तिक द्रव्यों की एकत्र स्थिति में तो कहना ही क्या ? अर्थात् जैसे पानी से भरे हुए घट में चीनी, रेत, भस्म लोहे के कांटे आदि प्रवेश कर जाते हैं, वैसे ही परस्पर विरोध रहित जीवादि अनंत पदार्थ लोकाकाश में रह जाते हैं। इसलिए अमूर्तिक होने से इन धर्मादि के प्रदेशों का परस्पर एक स्थान में रहने में कोई विरोध नहीं है, ऐसा जानना चाहिए।

इनका अनादि संबंध परिणामिक स्वरूप में होने से भी कोई विरोध नहीं है। भेद, संघात, गति, परिणाम पूर्वक आदिमान संबंध वाले किसी स्थूल स्कंधो के प्रदेशों में परस्पर विरोध हो भी सकता है- अर्थात् बहुत से प्रदेश वाले पदार्थ थोड़े स्थान में नहीं रह सकते, परंतु भेद संघात वाले पदार्थों के समान धर्मादि

पदार्थों का आकाश प्रदेशों के साथ आदि संबंध नहीं है अपितु इनका परिणामिक संबंध है अतः इनमें परस्पर प्रदेशों का अविरोध सिद्ध है अर्थात् अमूर्तिका पूर्वापरभाव रहित अनादि संबंधी धर्मादिक का परस्पर विरोध नहीं है।

एकप्रदेशादिषु भाज्यः पुद्गलानाम्। (14)

लोकाकाशे एकप्रदेशादिषु भाज्यः एक प्रदेशसंख्येयासंख्येयानन्त प्रदेशानां पुद्गलानामवगाहः।

In one pradesa, i.e., in one unitary cell of space only one atom of matter will find place if it is in a free state but in an aggregate from any number of atoms can occupy one or more cells of space.

पुद्गलों का अवगाहन लोकाकाश के एक प्रदेश आदि में विकल्प से होता है। एक परमाणु आकाश के जितने क्षेत्र को घेरता है उसे एक प्रदेश कहते हैं अर्थात् एक आकाश प्रदेश में स्वतंत्र रूप से एक परमाणु रहता है। दो परमाणु यदि पृथक्-पृथक् रूप में रहते हैं तो आकाश के दो प्रदेश में रहते हैं। यदि दो परमाणु आपस में बंध जाते हैं तो आकाश के एक प्रदेश में उनका अवगाह होता है। उसी प्रकार तीन परमाणु यदि स्वतंत्र-स्वतंत्र रूप में रहते हैं तो आकाश के तीन प्रदेश में रहते हैं परंतु जब परस्पर में बंध जाते हैं तो एक प्रदेश, दो प्रदेश और तीन प्रदेश में भी रह सकते हैं। इसी प्रकार बंध विशेष के कारण संख्यात, असंख्यात और अनंत प्रदेशी पुद्गल स्कंधों का लोकाकाश के एक, संख्यात और असंख्यात प्रदेशों में अवस्थान जानना चाहिये। एक आकाश प्रदेश में एक परमाणु से लेकर अनन्तानंत परमाणु समावेश होकर रहने का कारण यह है कि, पुद्गल के प्रचय विशेष सूक्ष्म परिणमन और आकाश की अवगाह शक्ति के कारण होता है।

एक कोठे (कमरे) में अविरोध रूप से अनेक प्रकाशों का अवस्थान देखा जाता है। जैसे एक कमरे में बहुत से दीपकों का प्रकाश रह जाता है, न तो उससे क्षेत्र विभाग (भिन्न-भिन्न क्षेत्र) होता है। और न एक प्रदेश में रहने से उन सब प्रकाशों का एकत्व होता है अर्थात् उनकी पृथक् सत्ता नष्ट नहीं होती है, उसी प्रकार एक प्रदेश में अनंत स्कंध अति सूक्ष्म परिणमन के कारण स्वभाव में साङ्ख्य्य हुए बिना ही रह सकते हैं। इसमें कोई विरोध नहीं है।

अथवा, द्रव्य का स्वभाव तर्कणा के योग्य नहीं है क्योंकि द्रव्यों के स्वभाव

प्रतिनियम होते हैं। उनके स्वभाव में ऐसा हो, ऐसा न हो, ऐसा तर्क नहीं चलता, जैसे अग्नि का स्वभाव जलाने, पकाने आदि का है और तृण आदि का स्वभाव जलाने, पकाने आदि का है। इनके स्वभाव में कोई तर्क नहीं चलता, उसी प्रकार पुद्गलादि के मूर्तिमान द्रव्य होने पर भी अनेक स्कंधों का एक आकाश प्रदेश में अवगाहन स्वभाव के कारण अवस्थान होने में कोई विरोध नहीं है। अर्थात् एक प्रदेश में अनेक स्कंध रह सकते हैं।

अथवा आर्ष प्रणीत आगम होने से सूक्ष्म निगोदिया जीवों के अवस्थान के समान एक प्रदेश में अनेक स्कंध रह जाते हैं। सर्वज्ञ ज्ञान के द्वारा जिसके अर्थ का सार प्रकट किया गया है, गणधरों ने जिसके वचनों का अनुसरण करके जिसकी रचना की है अर्थात् अंगों में विभक्त किया है तथा आरातीय (प्राचीन) आचार्यों के शिष्यों-प्रतिशिष्यों के प्रबन्ध से विच्छेद के बिना अविच्छिन्न रूप से जिसकी संतान-परंपरा चली आ रही है, उन निर्दोष ग्रन्थों को आर्ष कहते हैं। उन आर्ष (प्रतिप्रणीत) ग्रंथों में लिखा है कि सारालोक-अनंतानंत विविध प्रकार के बादर एवं सूक्ष्म पुद्गलकाय के द्वारा ठसा-ठस भरा हुआ है आदि। अतः आर्ष वाक्यों की प्रमाणता से भी उक्त स्कंधों का एकादि प्रदेशों में अवगाह जानना चाहिये। जैसे सर्वज्ञ प्रणीत आगम के अनुसार एक निगोद शरीर में साधारण, आहार जीवन, मरण और श्वासोच्छ्वास होने से साधारण संज्ञा वाले अनंत निगोदियों का अवस्थान बताया है, इसलिये साधारण यह अन्वर्थ संज्ञा आगम प्रमाण से जानी जाती है, उसी प्रकार आगम में यह भी बताया है कि 'यह सारा लोकाकाश सर्वतः अनंतानंत विविध सूक्ष्म और बादर पुद्गलकायों से ठसा-ठस भरा हुआ है।' अतः आगम प्रमाण से इनका भी अवस्थान समझना चाहिये।

असंख्येयभागादिषु जीवानाम्। (15)

लोकाकाशे असंख्येयभागादिषु जीवानामवगाहो भवति॥

The place of souls is in one or more of (these) innumerable parts.

जीवों का अवगाह लोकाकाशके असंख्यातवें भाग आदि में है। लोकाकाश के असंख्यात प्रदेश हैं। उसके असंख्यातवें भाग करने पर जो एक भाग प्राप्त होगा उसे असंख्यतवां भाग कहते हैं। उस असंख्यातवें भाग में भी असंख्यात प्रदेश होते हैं। क्योंकि असंख्यात को असंख्यात से भाग करने पर भागफल भी असंख्यात

ही आता है, परंतु भागफल भाज्य से छोटा होगा, ऐसे लोकाकाश में एक जीव रह सकता है। इसका स्पष्टीकरण इसी प्रकार है।

एक असंख्यातवें भाग में एक जीव रहता है। इस प्रकार दो, तीन और चार आदि असंख्यातवें भागों को लेकर सब लोक पर्यंत जीव का अवगाह जानना चाहिए। किंतु नाना जीवों का अवगाह सब लोक में ही होता है।

प्रश्न— यदि लोक के एक असंख्यातवें भाग में एक जीव रहता है तो संख्या की अपेक्षा अनंतानंत सशरीर जीवरश्मि लोकाकाश में कैसे रह सकती है?

समाधान— जीव दो प्रकार के हैं सूक्ष्म और बादर, अतः उनका लोकाकाश में अवस्थान बन जाता है। जो बादर जीव हैं उनका शरीर तो प्रतिघात सहित होता है। किंतु जो सूक्ष्म हैं वे यद्यपि सशरीर हैं तो भी सूक्ष्म होने के कारण एक निगोद जीव आकाश के जितने प्रदेशों को अवगाहन करता है उतने में साधारण शरीर वाले अनंतानंत जीव रह जाते हैं। वे परस्पर में और बादरों के साथ व्याघात को नहीं प्राप्त होते इसलिए लोकाकाश में अनंतानंत जीवों के अवगाह में कोई विरोध नहीं आता।

लोगस्स असंखेज्जदिभागप्पहुदिं तु सब्वलोगो वि ।

अप्पपदेसविसप्पणसंहारे वावडो जीवो ॥

(584) गो. जी. पृ. 264

एक जीव अपने प्रदेशों के संहार विसर्प की अपेक्षा लोक असंख्यातवें भाग से लेकर संपूर्ण लोक तक में व्याप्त होकर रहता है।

प्रदेश एवं अप्रदेश की परिभाषा

जध ते णभप्पदेसा तधप्पदेसा हवंति सेसाणं ।

अपदेसो परमाणू तेण पदेसुब्भवो भणिदो ॥

(137) प्र.सार

Just as there are points of space. So are there of the remaining (substances), a primary atom is without space points because (being an unit) it gives rise to the (Measure of) space - point.

जैसे एक परमाणु से व्याप्त क्षेत्र को आकाश का प्रदेश कहते हैं वैसे ही अन्य द्रव्यों के प्रदेश भी होते हैं ऐसा कहते हैं—

(जध) जैसे (ते णभप्पदेसा) वह परमाणु से व्याप्त क्षेत्र आकाश द्रव्य का प्रदेश होता है। (तधप्पदेसा सेसाणं हवंति) तैसे ही धर्मादि अन्य द्रव्यों के प्रदेश होते हैं। (परमाणु अपदेसो) एक अविभागी पुद्गल परमाणु अप्रदेशी है (तेण) उस परमाणु से (पदेसुब्भवो भणिदो) प्रदेश की प्रगटता होती है। एक परमाणु जितने आकाश क्षेत्र को रोकता है उसको प्रदेश कहते हैं। उस परमाणु के दो आदि प्रदेश नहीं हैं। इस प्रदेश के माप से आकाश द्रव्य की तरह शुद्ध बुद्ध एक स्वभाव परमात्म द्रव्य को आदि लेकर शेष द्रव्यों के भी प्रदेश होते हैं। इनका विस्तार से कथन अन्यत्र है।

समीक्षा— इस गाथा में आचार्य श्री ने प्रदेश की परिभाषा तथा प्रदेश के साथ-साथ सप्रदेशी एवं अप्रदेशी की परिभाषा दी है। अविभाज्य पुद्गल द्रव्य को परमाणु कहते हैं इसके दूसरे प्रदेश नहीं होने के कारण इसको अप्रदेशी भी कहते हैं। यह अविभाज्य पुद्गल परमाणु जितने आकाश को अवगाहित करके रहता है उसको एक आकाश प्रदेश कहते हैं। इस इकाई के माध्यम से ही संपूर्ण द्रव्यों के प्रदेश की गणना की जाती है। विश्व द्रव्य विज्ञान (द्रव्य संग्रह) में कहा भी है—

जावदियं आयासं अविभागी पुग्गलाणुवड्डं ।

तं खु पदेसं जाणे सव्वाणुद्दाणदारिहं ।

(27) पृ. 163

जितना आकाश अविभागी पुद्गलाणु से रोका जाता है उसको सब परमाणुओं को स्थान देने में समर्थ प्रदेश जानो।

इस गाथा में आचार्य श्री ने आकाश प्रदेश की परिभाषा एवं उसकी अवगाहनत्व शक्ति का वर्णन किया है। प्रदेश की परिभाषा करते हुए आचार्यश्री ने कहा है कि शुद्ध अविभागी पुद्गल परमाणु जो अति सूक्ष्म होता है वह जितने आकाश प्रदेश को घेरता है अथवा उसका जितना घनफल है उस घनफल को एक प्रदेश कहते हैं। यह परमाणु इतना सूक्ष्म है कि इसे मति ज्ञानी, श्रुतज्ञानी एवं सामान्य अवधिज्ञानी भी नहीं देख सकते हैं। इसे भौतिक वैज्ञानिक सूक्ष्मदर्शी यंत्र से भी नहीं देख सकते हैं। इसको विशिष्ट अवधिज्ञानी, मनः पर्ययज्ञानी एवं केवलज्ञानी ही देख सकते हैं। ऐसे परमाणु प्रमाण आकाश प्रदेश को एक प्रदेश कहते हैं और यह प्रदेश क्षेत्र मापने की सबसे शुद्धतम ईकाई है। इस प्रदेश के द्वारा ही आकाश के प्रदेश, धर्म द्रव्य के प्रदेश, अधर्म द्रव्य के प्रदेश, जीव द्रव्य के प्रदेश, काल द्रव्य का प्रदेश मापा जाता है। ऐसे सूक्ष्म आकाश

प्रदेश में भी इतनी अवगाहन शक्ति है कि वह आकाश प्रदेश, एक धर्मद्रव्य, एक अघाम द्रव्य, एक काल द्रव्य, संख्यात, असंख्यात एवं अनंत परमाणु को भी अवकाश दे सकता है। इसके साथ-साथ अनेक जीवों के आत्म प्रदेशों को भी स्थान दे सकता है।

इस प्रकार की अवगाहन शक्ति जो आकाश में है इसी हेतु से असंख्यात प्रदेश प्रमाण लोकाकाश में अनंतानंत जीव तथा उन जीवों से भी अनंतगुणे पुद्गल अवकाश को प्राप्त होते हैं। सो ही जीव तथा पुद्गल के विषय में इसके अवकाश देने का सामर्थ्य आगम में कहा है।

सव्वेसिं खंधाणं जो अंतो तं वियाण परमाणू।

सो सस्सदो असदो एक्को अविभागी मुत्तिभवो ॥

(77) पृ. (219) पं.का.

सर्व स्कंधों का जो अंतिम भाग उसे परमाणु जानो वह अवभागी, एक शाश्वत, मूर्तिप्रभव और अशब्द है।

आदेसमेत्तमुत्तो धादुचदुक्कस्स कारणं जो दु।

सो णेओ परमाणु परिणामगुणो सयमसद्धो ॥ (78)

जो आदेशमात्र से मूर्त है और जो (पृथ्वी आदि) चार धातुओं का कारण है उसे परमाणु जानना जोकि परिणामगुण वाला है और स्वयं अशब्द है।

णिच्चो णाणवकासो ण सावकासो पदेसदो भेदा।

खंधाणं पि य कत्ता पविहत्ता कालसंखाणं ॥ (80)

जो परमाणु है, वह वास्तव में एक प्रदेश द्वारा - जो कि रूपादि गुण सामान्यवाला है उसके द्वारा सदैव अविनाशी होने से नित्य है, वह वास्तव में एक प्रदेश द्वारा उससे (प्रदेश से) अभिन्न अस्तित्ववाले स्पर्शादि गुणों को अवकाश देता है इसलिये अनवकाश नहीं है - वह वास्तव में प्रदेश द्वारा (उसमें) द्वि-आदि प्रदेशों का अभाव होने से, स्वयं ही आदि, स्वयं ही मध्य और स्वयं ही अंत होने के कारण (अर्थात् निरंश होने के कारण) सावकाश नहीं है, वह वास्तव में एक प्रदेश द्वारा स्कन्धों के भेद का निमित्त होने से स्कन्धों का भेद न करने वाला है। वह वास्तव में एक प्रदेश द्वारा स्कंध के संघात का निमित्त होने से स्कंधों का कर्ता है, वह वास्तव में एक प्रदेश द्वारा जो कि एक आकाश प्रदेश का अतिक्रमण करने वाले (लांघने वाले) अपने गति परिणाम को प्राप्त होता है उसके द्वारा - 'समय' नामक काल

का विभाग करता है, इसलिये काल का विभाजक है। वह वास्तव में एक प्रदेश द्वारा संख्या का भी विभाजक है क्योंकि वह एक प्रदेश द्वारा उससे रचे जाने वाले दो आदि भेदों पूर्वक द्रव्य संख्या का विभाग स्कंधों में करता है, (2) वह एक प्रदेश द्वारा, उसके जितनी मर्यादा वाले एक आकाश प्रदेश, पूर्वक क्षेत्र संख्या का विभाग करता है (3) वह एक प्रदेश द्वारा एक आकाश प्रदेश का अतिक्रम करने वाले उस गति परिणाम जितनी मर्यादा वाले समय पूर्वक काल संख्या का विभाग करता है, (4) वह एक प्रदेश द्वारा, उसमें विवर्तन पानेवाले (परिवर्तित, परिणमित) जघन्य वर्णादिक भाव को जानने वाले ज्ञानपूर्वक भाव संख्या का विभाग करता है इस कारण वह संख्या का विभाजन करने वाला भी है।

विभिन्न मूलभूत "ईकाई"

(1) विभाजक- विभाग करने वाला, मापने वाला! स्कंधों में द्रव्य संख्या का माप अर्थात् वे कितने अणुओं-परमाणुओं से बने हैं ऐसा माप करने में अणुओं की परमाणुओं की अपेक्षा होती है, अर्थात् वैसा माप परमाणु द्वारा होता है। क्षेत्र के माप का एकक (एकम) 'आकाश प्रदेश' है और आकाश प्रदेश की व्याख्या में परमाणु की अपेक्षा होती है, इसलिये क्षेत्र का माप भी परमाणु द्वारा होता है। काल के एक माप का एकक 'समय' है और समय की व्याख्या में परमाणु की अपेक्षा होती है, इसलिये काल का माप भी परमाणु द्वारा होता है तथा ज्ञानभाव के (ज्ञान पर्याय के) माप का एकक 'परमाणु में परिणमित जघन्य वर्णादिभाव को जाने उतना ज्ञान' है और उसमें परमाणु की अपेक्षा होती है, इसलिये भाव का (ज्ञान भाव का) माप भी परमाणु द्वारा होता है। इस प्रकार परमाणु द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव का माप करने के लिये गज समान है। (2) एक परमाणु प्रदेश बराबर आकाश के भाग को - (क्षेत्र को) 'आकाश प्रदेश' कहा जाता है। यह 'आकाश प्रदेश' क्षेत्र का 'एकक' है। (गिनती के लिये किसी वस्तु के जितने परिमाण को एक माप माना जाये, उतने परिमाण को उस वस्तु का एकक (ईकाई) कहा जाता है।) (3) परमाणु को एक आकाश प्रदेश से दूसरे अनन्तर आकाश प्रदेश में (मंदगति से) जाते हुए जो समय लगता है उसे 'समय' कहा जाता है। आकाश आदि बहुप्रदेशी द्रव्यों के प्रदेशों की गणना परमाणुओं के द्वारा की जाती है तथापि इनके प्रदेश परस्पर भिन्न होकर नहीं रहते हैं परंतु परस्पर अखण्ड रूप में रहते हैं। केवलज्ञान के माध्यम से उनकी अंश कल्पना की गई है जिस प्रकार आकाश एक अनंतानंत प्रदेशवाला द्रव्य है। इसके लोकाकाश में असंख्यात

प्रदेश होते हैं और अलोकाकाश में अनंतानंत प्रदेश होते हैं। लोकाकाश, अलोकाकाश कोई वस्तुतः आकाश के पूर्ण विखण्डित अलग-अलग दो टुकड़े नहीं है परंतु जहाँ पर संपूर्ण द्रव्य रहते हैं उसे लोकाकाश कहते हैं। जहाँ केवल आकाश रहता है उसे अलोकाकाश कहते हैं। जिस प्रकार इसमें दूसरी अपेक्षा से प्रयोजन के कारण भेद की कल्पना की गई है इसीप्रकार जीवादि द्रव्य में जान लेना चाहिए।

(भगवत् कुंदकुंदाचार्य) स्वयं ही (प्र.सा. 140 वे) सूत्र द्वारा कहे कि आकाश के प्रदेश का लक्षण एकाणुव्याप्यत्व (अर्थात् एक परमाणु से व्याप्त होना) है। यहाँ (इस सूत्र गाथा में) जिस प्रकार आकाश के प्रदेश हैं उसी प्रकार शेष द्रव्यों के प्रदेश हैं। इस प्रकार प्रदेश के लक्षण की एक प्रकारता कही जाती है। इसलिये एकाणु व्याप्य (जो एक परमाणु से व्याप्य हो ऐसे) अंश के द्वारा गिने जाने पर जैसे आकाश के अनंत अंश होने पर आकाश अनंत प्रदेशी है, उसी प्रकार एकाणु व्याप्त अंश द्वारा गिने जाने पर धर्म, अधर्म और एक जीव के असंख्यात अंश होने से वे प्रत्येक असंख्याक प्रदेशी हैं। जैसे (संकोच विस्तार रहित होने की अपेक्षा) अवस्थित प्रमाण वाले धर्म तथा अधर्म असंख्यात प्रदेशी हैं, उसी प्रकार संकोच विस्तार के कारण (संकोच-विस्तार होने की अपेक्षा) अनविस्थित प्रमाण वाले जीव के सूखे गीले चमड़े की भांति-निज अंशों का अल्प बहुत्व नहीं होता (संख्या में प्रदेशों की हानि वृद्धि नहीं होती) इसलिये असंख्यात प्रदेशित्व ही है। यहाँ यह प्रश्न होता है कि अमूर्त जीव का संकोच विस्तार कैसे संभव है? उसका समाधान किया जाता है।

अमूर्त के संकोच विस्तार की सिद्धि तो अपने अनुभव से ही साध्य है, क्योंकि (सबको स्वानुभव से स्पष्ट है कि) जीव स्थूल तथा कृश शरीर में तथा बालक और कुमार के शरीर में व्याप्त होता है। (जीव के जो प्रदेश मोटे शरीर में फैले हुये थे, वे ही शरीर के पतले हो जाने पर सिकुड़ गये तथा बालक के शरीर में जो जीव प्रदेश सिकुड़े हुए थे, वे ही कुमार अवस्था के शरीर में फैल जाते हैं। इस प्रकार से जीव के प्रदेशों का संकोच तथा विस्तार सिद्ध होता है। पुद्गल तो द्रव्य की अपेक्षा से एक प्रदेशमात्र होने से यथोक्त (पूर्व कथित) प्रकार से अप्रदेशी है, तथापि दो प्रदेश आदि (द्वयणुक आदि) स्कंधों के हेतुभूत तथापि (उस प्रकार के) स्निग्ध और रुक्ष गुण रूप परिणमित होने की शक्ति रूप स्वभाव के कारण उस पुद्गल के प्रदेशों का (बहु प्रदेशत्व का) उद्भव है। इसलिये पर्यायतः अनेक प्रदेशित्व की भी संभावना होने से पुद्गल द्वि-प्रदेशत्व से लेकर संख्यात, असंख्यात और अनंत प्रदेशत्व भी न्याय युक्त है।

अध्याय-6

जैन विज्ञान में वर्णित तम स्कन्ध (श्याम विवर)

अरुणवर-दीव-बाहिर-जगदीदो जिणवरत्त-संखाणि
मंतूण जोयणाणिं, अरुण-समुद्दस्स मणिधीए ॥(620)

एक्क-दुग-सत्त-एक्के, अंक-कमे जोयणाणि उवरि णहं।
गंतूणं वलएणं, चेद्देदि तमो तमक्काओ ॥(621)

(तिलोयपण्णत्ती 3, पृ. 594)

(नन्दीश्वर समुद्र के आगे 9वें) अरुणवरद्वीप की बाह्य जगती से जिनेन्द्रोक्त संख्या प्रमाण योजन जाकर अरुण समुद्र के प्रणधि भाग में अंक क्रम से एक, दो, सात और एक अर्थात् एक हजार सात सां इक्कीस (1721 योजन= 688-400 मील) प्रमाण उपर आकाश में जाकर बलयरूप से तमस्काय (अन्धकार) स्थित हैं।

आदिम-चउ-कप्पेसुं, देस-वियप्पाणि तेसु कादूणं।
उवरि-गद-बम्ह-कप्प-प्पढमिदय-पणिधि-तल-पत्तो ॥(622)

(यह तमस्काय) आदि के चार कल्पों में देश-विकल्पों को अर्थात् कहीं-कहीं अन्धकार उत्पन्न करके उपरिगत ब्रह्म-कल्प सम्बन्धी प्रथम इन्द्रक के प्रपणधितल भाग को प्राप्त हुआ है।

नन्दीश्वर समुद्र को वेष्टित कर नौवां अरुणवर द्वीप है और अरुणवर द्वीप को वेष्टित कर नौवाँ अरुणवर समुद्र है। मण्डलाकार स्थित इस समुद्र का व्यास (13107200000 योजन = 13107200000 X 400 मील) प्रमाण हैं।

अरुणवर द्वीप की बाह्य जगती अर्थात् अरुणवर समुद्र की अभ्यन्तर जगती से 1721 योजन प्रमाण दूर जाकर आकाश में अरिष्ट नामक अन्धकार बलयरूप से स्थित है और प्रथम चार कल्पों को (एकदेश) आच्छादित करता हुआ पाँचवें बाह्य कल्प में स्थित अरिष्ट नामक इन्द्रक के तल भाग में एकत्रित होता है। उस जगह इसका आकार मुर्गे की कुटी (कुडला) के सदृश होता है। अथवा जैसे भूसा भरने की बुरजी नीचे गोल होकर क्रमशः ऊपर को फैलकर बढ़ती हुई पुनः

शिखाऊरूप ऊपर जाकर घट जाती है, उसी प्रकार इस अन्धकार स्कन्ध की रचना है। इस अरिष्ट विमान के तल भाग से अक्ष-पाटक के आकार वाली अथवा यम की वेदिका सदृश होता हुआ यह तम आठ श्रणियों में विभक्त हो जाता है। मृदंग सदृश आकार वाली ये तम पंक्तियाँ चारों दिशाओं में दो-दो होकर विभक्त एवं तिरछी होती हुई लोक-पर्यन्त चली गई हैं। उन अन्धकार पंक्तियों के अन्तराल में ईशानादि विदिशाओं और दिशाओं में सारस्वत आदिक लौकान्तिक देवगण अवस्थित रहते हैं।

मूलम्मि रूंद- परिही, हवेदि संखेज्ज-जोयणा तरस्स ।

मज्झम्मि असंखेज्जा, उवरिं ततो असंखेज्जो ॥(623)

उस (तम) की विस्तार परिधि मूल में संख्यात योजन, मध्य में असंख्यात योजन और इससे ऊपर असंख्यात योजन है।

संखेज्ज-जोयणाणिं, तमकायदो दिसाए पुव्वाए ।

गच्छिय संउस-मुखायार- धरो दक्खिणुत्तरायामो ॥ (624)

णामेण किण्हराई, पच्छिमभागे वि तारिसो य तमो ।

दक्खिण-उत्तर-भागे, तम्मे तं गंधुव दीह-चउरस्सा ॥(625)

एक्के क्क-किण्हराई, हवेदि पुव्वावरट्टिदायामा ।

एदाओ राजीओ, णियमा ण छिवंति अण्णोण्णं ॥(626)

तमस्काय से पूर्व दिशा में संख्यात योजन जाकर, षट्कोण आकार को धारण करने वाला और दक्षिण-उत्तर लम्बा कृष्णराजी नामक तम है। पश्चिम भाग में भी वैसा ही अंधकार है। दक्षिण एवं उत्तर भाग में उतनी प्रमाण आयत, चतुष्कोण और पूर्व-पश्चिम आयाम वाली एक-एक कृष्ण राजी स्थित है। ये राजियाँ नियम से परस्पर एक दूसरे को स्पर्श नहीं करती हैं।

संखेज्ज-जोयणाणिं, राजीहिं तो दिसाए पुव्वाए ।

गंतूणब्भंतरए, राजी किण्हा य दीह - चउरस्सा ॥(627)

उत्तर-दक्खिण-दीहा, दक्खिण-राजिं ट्टिदा य छिविदूणं ।

पच्छिम-दिसाए उत्तर-राजिं छिविदूण होदि अण्ण-तमो ॥(628)

राजियों से संख्यात योजन पूर्व दिशा में अभ्यन्तर भाग में जाकर आयतचतुरस्र

और उत्तर-दक्षिण दीर्घ कृष्ण-राजी है जो दक्षिण राजी को छूती है। पश्चिम दिशा में उत्तर राजी को छूकर अन्यतम है।

संखेज्ज-जोयणाणिं, राजीदो दक्खिणाए आसाए ।

गंतूणब्भंतरए, एक्कं चिय किण्ह-राजियं होई ॥(629)

राजी से दक्षिण दिशा में आभ्यन्तर भाग में संख्यात योजन जाकर एक ही कृष्ण राजी है।

दीहेण छिदिदरय य, जब-खेत्तरस्सेक्क-भाग- सारिच्छा ।

पच्छिम-बाहिर-राजिं, छिविदूणं सा ठिदा णियमा ॥(630)

दीर्घता की ओर से छेदे हुए यवक्षेत्र के एक भाग के सदृश वह राजी नियम से पश्चिम बाह्य राजी को छूकर स्थित है।

पुव्वापर-आयामो, तम काय दिसाए होदी तप्पट्टी ।

उत्तर-भागम्मि तमो, एक्को छिविदूण पुव्व-बहि-राजी ॥(631)

(दक्षिण) दिशा में पूर्वापर आयत तमस्काय है। उत्तर भाग में पूर्व बाह्य राजी को छूकर एक तम है।

कृष्ण - राजियों का अल्पबहुत्व

अरुणवर-जीव-बाहिर-जगदीए तह यह तम-सरीरस्स ।

विच्चालणहयलादो, अब्भंतर-राजि-तिमिर-कायाणं ॥(632)

विच्चालं आयासे, तह संखेज्जगुणं हवेदि णियमेणं ।

तं माणदो पेयं, अब्भंतर-राजि-संख-गुण-जुत्ता ॥(633)

अब्भंतर-राजीदो, अहिरेग-जुदो हवेदि तमकाओ ।

अब्भंतर -राजीदो, बाहिर-राजी व किंचूणा ॥(634)

बाहिर-राजीहिंतो, दोण्णं राजीण जो दु विच्चालो ।

अदिरित्तो इय अप्पाबहुतं होदी हु चउ-दिसासुं पि ॥(635)

अरुणवर द्वीप की बाह्य जगती तथा तमस्काय के अन्तराल से अभ्यन्तर राजी के तमस्कायों का अन्तराल-प्रमाण नियम से संख्यात गुणा है। इस प्रमाण से अभ्यन्तर राजी संख्यातगुणी है। अभ्यन्तर राजी से अधिक तमस्काय है। अभ्यन्तर राजी से ब्राह्म राजी कुछ कम है। बाह्य-राजियों से दोनों राजियों का जो अन्तराल

है वह अधिक है। इस प्रकार चारों दिशाओं में भी अल्पबहुत्व है।

एदम्मि तमिस्सेदे, विहरंते अप्प-रिदिदया देवा।

दिम्मूढा उच्यंते, माहप्पणं महदिय-सुराणं ॥(636)

तिलोय पण्णो

इस अन्धकार में विहार करते हुए जो अल्पद्विक देव दिग्भ्रान्त हो जाते हैं वे महर्द्धिक देवों के माहात्म्य से निकल पाते हैं।

काजल सदृश यह अन्धकार पुद्गल की कृष्ण वर्ण की पर्याय है। जैसे कुलाचल एवं सूर्य-चन्द्र के बिम्ब आदि पुद्गल की पर्यायें अनादि निधन हैं, उसी प्रकार यह अन्धकार का पिण्ड भी अनादि निधन है।

जैसे उष्णता शीत-स्पर्श की नाशक है परन्तु शीत पदार्थ भी उष्णता को समूल नष्ट कर सकता है। वैसे ही कतिपय अन्धकार तो प्रकाशक पदार्थ से नष्ट हो जाते हैं किन्तु कुछ अन्धकार ऐसे हैं जिन्हें प्रकाशक पदार्थ ठीक उसी रंग रूप में प्रकाशित तो कर देते हैं किन्तु नष्ट नहीं कर पाते। जैसे मशाल के ऊपर निकल रहे धुएँ को मशाल की ज्योति नष्ट नहीं कर पाती अपितु उसे दिखाती ही है। उसी प्रकार अरुणसमुद्र स्थित सूर्य-चन्द्र काली स्याही को धूल सदृश फेंक रहे इस गाढ़ अन्धकार का बालाग्र भी खण्डित नहीं कर सकते अपितु काले रंग की दीवाल या काले वस्त्र सदृश मात्र उसे दिखा रहे हैं। (तत्त्वार्थ श्लोकवार्तिकालंकार पंचम खण्ड से)

इस घोर अन्धकार में विहार करते हुए अल्पद्विक देव जन दिग्भ्रान्त हो जाते हैं तब वे महर्द्धिक देवों की सहायता से ही निकल पाते हैं।

भगवन्! 'तमस्काय' किसे कहा जाता है? क्या 'तमस्काय' पृथ्वी को कहते हैं या पानी को? (व्याख्या प्रज्ञप्ति सूत्र भाग-2 पृ. 53)

गौतम! पृथ्वी 'तमस्काय' नहीं कहलाती, किन्तु पानी 'तमस्काय' कहलाता है।

भगवन्! किस कारण से पृथ्वी तमस्काय नहीं कहलाती, किन्तु पानी तमस्काय कहलाता है?

गौतम! कुछ पृथ्वीकाय ऐसा शुभ है, जो देश (अंश या भाग) को प्रकाशित करता है और कुछ पृथ्वीकाय ऐसा है, जो देश (भाग) को प्रकाशित नहीं करता। इस कारण से पृथ्वी तमस्काय नहीं कहलाती, पानी ही तमस्काय कहलाता है।

भगवन् तमस्काय कहाँ से समुत्थित (उत्पन्न-प्रारम्भ) होता है और कहाँ जाकर

निष्कृत (स्थित या समाप्त) होता है?

गौतम! जम्बूद्वीप नामक द्वीप के बाहर तिरछे असंख्यात द्वीप समुद्रों को लांघने के बाद अरुणवर द्वीप की बाहरी वेदिका के अन्त से अरुणोदय समुद्र में 42,000 योजन अवगाहन करने (जाने) पर वहाँ के ऊपरी जलान्त से एक प्रदेश वाली बणी आती है, यहीं से तमस्काय समुत्थित (उठा-प्रादूर्भूत हुआ) हैं। वहाँ से 1721 योजन ऊँचा जाने के बाद तिरछा विस्तृत से विस्तृत होता हुआ, सौधर्म, शान, सनत्कुमार और माहेन्द्र, इन चार देवलों को (कल्पों) को आवृत (आच्छादित) करके उनसे भी ऊपर पंचम ब्रह्मलोककल्प के रिष्टविमान नामक प्रस्तर (पाथड़े) तक पहुँचा है और यही तमस्काय सन्नितिष्ठ (समाप्त या संस्थित) हुआ है।

भगवन्! तमस्काय का संस्थान (आकार) किस प्रकार का कहा गया है?

गौतम! तमस्काय नीचे तो मल्लक (शराब या सिकोरे) के मूल के आकार का कहा गया है।

भगवन्! तमस्काय का विष्कम्म (विस्तार) और परिक्षेप (धेरा) कितना कहा गया है?

गौतम! तमस्काय दो प्रकार का कहा गया है- एक तो संख्येय विस्तृत और दूसरा असंख्येय विस्तृत। इनमें से जो संख्येय विस्तृत है, उसका विष्कम्म संख्येय हजार योजन है। और परिक्षेप असंख्येय हजार योजन है। जो तमस्काय असंख्येय विस्तृत है, उसका विष्कम्म असंख्येय हजार योजन है और परिक्षेप भी असंख्येय हजार योजन है।

तमस्काय का आकार

भगवन्! तमस्काय कितना बड़ा कहा गया है?

गौतम! समस्त द्वीप समुद्रों के सर्वाभ्यन्तर अर्थात्-बीचोबीच यह जम्बूद्वीप है। यावत् यह एक लाख योजन का लम्बा चौड़ा है। इसकी परिधि तीन लाख सौलह हजार दो सौ सत्ताईस योजन, तीन कोस, एक सौ अट्ठाईस धनुष और साढ़े तेरह अंगुल से कुछ अधिक है। कोई महान्द्वि यावत् महानुभव वाला देव- 'यह चला; यह चला;' यों करके तीन चुटकी बजाए, उतने समय में सम्पूर्ण जम्बूद्वीप की इक्कीस बार परिक्रमा करके शीघ्र वापस आ जाए, इस प्रकार की उत्कृष्ट और त्वरायुक्त यावत् देवों की गति से चलता हुआ देव यावत् एक दिन, दो दिन, तीन दिन चले, यावत् उत्कृष्ट छह महीने

तक चले तब जाकर कुछ तमस्काय को उल्लंघन कर पाता है, और कुछ तमस्काय को उल्लंघन नहीं कर पाता। हे गौतम! तमस्काय इतना बड़ा (महालय) कहा गया है।

भगवन्! तमस्काय में गृह (घर) हैं, अथवा गृहापण (दूकानें) हैं?

गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

भगवन्! तमस्काय में ग्राम हैं यावत् अथवा सन्निवेश हैं?

गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

भगवन्! क्या तमस्काय में उदार (विशाल) मेघ संस्वेद को प्राप्त होते हैं, सम्मूर्च्छित होते हैं और वर्षा बरसाते हैं?

हाँ, गौतम! ऐसा है।

भगवन्! क्या उसे (मेघ-संस्वेदन-सम्मूर्च्छन-वर्षण) देव करता है, असुर करता है या नाग करता है?

हाँ गौतम! (ऐसा) देव भी करता है, असुर भी करता है और नाग भी करता है।

भगवन्! तमस्काय में क्या बादर स्तनित शब्द (स्थूल मेघगर्जना) है, क्या बावत विद्युत् है?

हाँ, गौतम! है।

भगवन्! क्या उसे देव करता है, असुर करता है या नाग करता है?

गौतम! तीनों ही करते हैं। (अर्थात्-देव भी करता है, असुर भी करता है और नाग भी करता है।)

भगवन्! क्या तमस्काय में बादर पृथ्वीकाय हैं और बादर अग्निकाय हैं? गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं है। वह निषेध विग्रहगतिसमापन्न के सिवाय समझना। (अर्थात्- विग्रहगतिसमापन्न बादर पृथ्वी और बादर अग्नि हो सकती है।)

भगवन्! क्या तमस्काय में चन्द्रमा, सूर्य, ग्रहगण, नक्षत्र और तारारूप हैं? गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं है, किन्तु वे (चन्द्रादि) तमस्काय के परिपार्श्व में (आसपास) हैं भी।

भगवन्! क्या तमस्काय में चन्द्रमा की आभा (प्रथा) या सूर्य की आभा है।

गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं है; किन्तु तमस्काय में (जो प्रभा है, वह) कादूषणिका (अपनी आत्मा को दूषित करने वाली) है।

भगवन्! तमस्काय वर्ण से कैसा है?

गौतम! तमस्काय वर्ण से काला, काली कान्ति वाला, गम्भीर (गहरा), रोम हर्षक

(गोंगटे खड़े करने वाला), भीम (भयंकर), उत्त्रासजनक और परमकृष्ण कहा गया है। कोई देव भी उस तमस्काय को देखते ही सर्वप्रथम तो क्षुब्ध हो जाता है। कदाचित् कोई देव तमस्काय में अभिसमागम (प्रवेश) करे भी तो प्रवेश करने के पश्चात् वह शीघ्र-शीघ्र त्वरित गति से झटपट उसे पार (उल्लंघन) कर जाता है।

भगवन्! तमस्काय के कितने नाम (नामधेय) कहे गए हैं?

गौतम! तमस्काय के तेरह नाम कहे गए हैं। वे इस प्रकार हैं- (1) तम, (2) तमस्काय, (3) अन्धकार (4) महान्धकार, (5) लोकान्धकार, (6) लोकतमिस्र, (7) देवान्धकार (8) देवतमिस्र, (9) देवारण्य (10) देवव्यूह (11) देवपरिध, (12) देवप्रतिक्षोभ (13) अरूपोदक समुद्र।

भगवन्! क्या तमस्काय पृथ्वी का परिणाम है, जल का परिणाम है, जीव का परिणाम है अथवा पुद्गल का परिणाम है?

गौतम! तमस्काय पृथ्वी का परिणाम नहीं है, किन्तु जल का परिणाम है, जीव का परिणाम भी है और पुद्गल का परिणाम भी है।

भगवन्! क्या तमस्काय में सर्व प्राण, भूत, जीव और सत्त्व-पृथ्वी कायिक रूप में यावत् त्रसकायिक रूप में पहले उत्पन्न हो चुके हैं?

हाँ गौतम! (सभी प्राण, भूत, जीव और सत्त्व, तमस्काय में) अनेक बार अथवा अनन्त बार पहले उत्पन्न हो चुके हैं, किन्तु बादर पृथ्वी कायिक रूप में या बादर अग्नि कायिक रूप में उत्पन्न नहीं हुए हैं।

तमस्काय का अर्थ है- अन्धकारमय पुद्गलों का समूह। तमस्काय पृथ्वीरजः स्कन्धरूप नहीं, किन्तु उदकरजः स्कन्धरूप है। क्योंकि जल अप्रकाशक होता है, और तमस्काय भी अप्रकाशक है। दोनों (अप्काय और तमस्काय) का समान स्वभाव होने से तमस्काय का परिणामी कारण अप्काय ही हो सकता है, क्योंकि वह अप्काय का ही परिणाम है। तमस्काय एक प्रदेश श्रेणीरूप है, इसका अर्थ यही है कि वह समभित्ति वाली श्रेणीरूप है। एक आकाश-प्रदेश की श्रेणीरूप नहीं। फिर तमस्काय का संस्थान मिट्टी के सकोरे के (मूल का) आकार सा ऊपर मुर्गे के पिंजरे-सा है। वह दो प्रकार का है- संख्येय विस्तृत और असंख्येय विस्तृत। पहला जलान्त से प्रारम्भ होकर संख्येय योजन तक फैला हुआ है, दूसरा असंख्येय योजन तक विस्तृत और असंख्येय द्वीपों को घेरे हुए है। तमस्काय इतना अत्यधिक विस्तृत है कि कोई देव 6 महिने तक अपनी उत्कृष्ट शीघ्र दिव्यगति से चले तो भी वह संख्येय योजन विस्तृत तमस्काय तक

पहुँचता है, असंख्येय योजन विस्तृत तमस्काय तक पहुँचना बाकी रह जाता है।

तमस्काय में न तो घर है, और न गृहापण है और न ही ग्राम नगर, स्तनिवेशादि हैं, किन्तु वहाँ बड़े-बड़े मेघ उमड़ते हैं, गर्जते हैं, बरसते हैं। बिजली भी चमकती है। देव, असुर या नाग कुमार ये सब कार्य करते हैं। विग्रहगति समापन बादर पृथ्वी या अग्नि को छोड़कर तमस्काय में न बादर पृथ्वीकाय है, न बादर अग्निकाय। (तमस्काय में चन्द्र-सूर्यादि नहीं है, किन्तु उसके आस-पास में हैं, उनकी प्रभा तमस्काय में पड़ती भी है, किन्तु तमस्काय के परिणाम से परिणत हो जाने के कारण नहीं— जैसी है।) तमस्काय काला, भयंकर काला और रोमहर्षक तथा त्रासजनक है। देवता भी उसे देखकर घबरा जाते हैं। यदि कोई देव साहस करके उसमें घुस भी जाए तो भी वह भय के मारे कायगति से अत्यन्त तेजी से और मनोगति से अतिशीघ्र बाहर निकल जाता है। तमस्काय के तम आदि तेरह सार्थक नाम हैं। तमस्काय पानी जीव और पुद्गलों का परिणाम है, जलरूप होने के कारण वहाँ बादर वायु वनस्पति और त्रस जीव उत्पन्न होते हैं। इनके अतिरिक्त अन्य जीवों का स्वस्थान न होने के उन की उत्पत्ति तमस्काय में सम्भव नहीं है।

कृष्णराजियाँ

भगवन्! कृष्णराजियाँ कितनी कही गई हैं ?

गौतम! कृष्णराजियाँ आठ हैं।

भगवन्! ये आठ कृष्णराजियाँ कहाँ हैं ?

गौतम! ऊपर सनत्कुमार (तृतीय) और माहेन्द्र (चतुर्थ) कल्पों (देवलोकों) पर और नीचे ब्रह्मलोक (पंचम) देवलोक के अरिष्ट नामक विमान के (तृतीय) प्रस्तर (पाथड़े) से नीचे, (अर्थात्) इस स्थान में अखाड़ा (प्रेक्षास्थल) के आकार की समचतुरस्र (सम-चौरस) संस्थान-वाली आठ कृष्णराजियाँ हैं। यथा- पूर्व में दो, पश्चिम में दो, दक्षिण में दो और उत्तर में दो। पूर्वाभ्यन्तर अर्थात्- पूर्वदिशा की आभ्यन्तर कृष्णराजि दक्षिण दिशा की बाह्य कृष्णराजि ने पश्चिम दिशा की बाह्य कृष्णराजि को स्पर्श किया हुआ है। पश्चिम दिशा की आभ्यन्तर कृष्णराजि ने उत्तर दिशा की बाह्य कृष्णराजि को स्पर्श किया हुआ है, और उत्तर दिशा की आभ्यन्तर कृष्णराजि पूर्वदिशा की बाह्य कृष्णराजि को स्पर्श की हुई है। पूर्व और पश्चिम दिशा की दो बाह्य कृष्णराजियाँ षडंश (षट्कोण) हैं, उत्तर और दक्षिण की दो बाह्य कृष्णराजियाँ त्र्यस्र (त्रिकोण) हैं, पूर्व और पश्चिम की दो आभ्यन्तर

कृष्णराजियाँ चतुरस्र (चतुष्कोण चौकोन) हैं, इसी प्रकार उत्तर और दक्षिण की दो आभ्यन्तर कृष्णराजियाँ भी चतुष्कोण हैं।

पुवावरा छलंसा, तंसा पुण दाहिणुत्तरा बज्झा।

अब्भंतर चउरंसा सत्त्वा वि य कण्हराईओ ॥1 ॥

“पूर्व और पश्चिम की कृष्णराजि षट्कोण हैं, तथा दक्षिण और उत्तर की बाह्य कृष्णराजि त्रिकोण हैं। शेष सभी आभ्यन्तर कृष्णराजियाँ चतुष्कोण हैं।” भगवन्! कृष्णराजियों का आयाम (लम्बाई), विष्कम्भ (विस्तार-चौड़ाई) और परिपेक्ष (घेरा=परिधि) कितना है ?

गौतम! कृष्णराजियों का आयाम असंख्येय हजार योजन है, विष्कम्भ संख्येय हजार योजन और परिपेक्ष असंख्येय हजार योजन कहा गया है।

भगवन्! कृष्णराजियाँ कितनी बड़ी कही गयी हैं ?

(गौतम! तीन चुटकी बजाए, उतने समय में इस सम्पूर्ण जम्बूद्वीप की इक्कीस बार परिक्रमा, करके आ जाए— इतनी शीघ्र दिव्यगति से कोई देव लगातार एक दिन, दो दिन, यावत् अर्द्धमास तक चले, तब कहीं वह देव किसी कृष्णराजि को पार कर पाता है, और किसी कृष्णराजि को पार नहीं कर पाता। हे गौतम! कृष्णराजियाँ इतनी बड़ी हैं।)

भगवन्! क्या कृष्णराजियों में गृह हैं अथवा गृहापण हैं ?

गौतम! यह अर्थ समर्थ (शक्य) नहीं है।

भगवन् ! क्या कृष्णराजियों में ग्राम आदि हैं ?

(गौतम!) यह अर्थ समर्थ नहीं है। (अर्थात्- कृष्णराजियों में ग्राम, नगर यावत् सन्निवेश नहीं है।)

भगवन्! क्या कृष्णराजियों ने उदार (विशाल) महामेघ संस्वेद को प्राप्त होते हैं, सम्मूर्च्छित होते हैं और वर्षा बरसाते हैं ?

हाँ, गौतम! कृष्णराजियों में ऐसा होता है।

भगवन्! क्या इन सबको देव करता है, असुर (कुमार) करता है अथवा नाग (कुमार) करता है ?

गौतम! (वहाँ यह सब) देव ही करता है, किन्तु न असुर (कुमार) करता है और न नाग (कुमार) करता है।

भगवन्! क्या कृष्णराजियों में बादर स्तनितशब्द है ?

गौतम! जिस प्रकार से उदार मेघों के विषय में कहा गया है, उसी प्रकार इनका

भी कथन करना चाहिए। (अर्थात्- कृष्णराजियों में बादर स्तनितंशब्द है और उसे देव करता है, किन्तु असुरकुमार या नागकुमार नहीं करता।)

भगवन्! क्या कृष्णराजियों में बादर, अष्काय, बादर अग्निकाय और वात वनस्पतिकाय है?

गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं है। यह निषेध विग्रहगति समापन्न जीवों के सिवाय दूसरे जीवों के लिए है।

भगवन्! क्या कृष्णराजियों में चन्द्रमा, सूर्य, ग्रहगण, नक्षत्र और तारास्वरूप हैं?

गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं है। (अर्थात्- ये वहाँ नहीं है।)

भगवन्! क्या कृष्णराजियों में चन्द्र की कान्ति (आभा) है?

गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं है।

भगवन्! कृष्णराजियों का वर्ण कैसा है?

गौतम! कृष्णराजियों का वर्ण काला है, यह काली कान्ति वाली है, यावात् परमकृष्ण (एकदम काला) है। तमस्काय की तरह अतीव (भयंकर होने से) देखते ही देव क्षुब्ध हो जाता है; यावत् अगर कोई देव (साहस करके इनमें प्रविष्ट हो जाए, तो भी वह) शीघ्र गति से झटपट इसे पार कर जाता है।

भगवन्! कृष्णराजियों के कितने नाम कहे गए हैं?

गौतम! कृष्णराजियों के आठ नाम कहे गए हैं। वे इस प्रकार हैं- (1) कृष्णराजि, (2) मेघराजि, (3) मघा, (4) माघवती, (5) बालपरिधा, (6) वातपरिक्षोभा, (7) देवपरिधा और (8) देवपरिक्षोभा।

भगवन्! क्या कृष्णराजियाँ पृथ्वी के परिणामरूप हैं, जल के परिणामरूप हैं, या जीव के परिणामरूप हैं, अथवा पुद्गलों के परिणामरूप हैं?

गौतम! कृष्णराजियाँ पृथ्वी के परिणामरूप हैं, किन्तु जल के परिणामरूप नहीं हैं, वे जीव के परिणामरूप भी हैं और पुद्गलों के परिणामरूप भी हैं।

भगवन्! क्या कृष्णराजियों में सभी प्राण, भूत, जीव और सत्त्व पहले उत्पन्न हो चुके हैं?

हाँ, गौतम! सभी प्राण, भूत, जीव और सत्त्व कृष्णराजियों में अनेक बार अथवा अनन्त बार उत्पन्न हो चुके हैं, किन्तु बादर अष्काय से, बादर अग्निकायरूप से और बादर वनस्पतिकाय रूप से उत्पन्न नहीं हुए हैं।

कृष्णराजियों में ग्रामादि या गृहादि नहीं है। वहाँ बड़े-बड़े मेघ हैं, जिन्हें देव

जाते हैं, गर्जते व बरसाते हैं। वहाँ विग्रहगति समापन्न बादर अष्काय, अग्निकाय और वनस्पतिकाय के सिवाय कोई बादर अष्काय, अग्निकाय या वनस्पतिकाय नहीं है। वहाँ न तो चन्द्रादि हैं, और न चन्द्र, सूर्य की प्रभा है। कृष्णराजियों का वर्ण तमस्काय के सदृश ही गाढ़ काला एवं अन्धकारपूर्ण है। कृष्णराजियों के 8 सार्धक नाम हैं। वास्तव में, ये कृष्णराजियाँ अष्काय के परिणाम रूप नहीं हैं, किन्तु अचित्त और अचित्त पृथ्वी के परिणामरूप हैं, इसलिए कहा जा सकता है कि ये जीव और पुद्गल, दोनों के विकाररूप हैं। बादर अष्काय, अग्निकाय और वनस्पतिकाय को छोड़कर अन्य सब जीव एक बार ही नहीं, अनेक बार और अनन्त बार कृष्णराजियों में उत्पन्न हो चुके हैं।

कृष्णराजियों के आठ नामों की व्याख्या-कृष्णराजि=काले वर्ण की पृथ्वी और पुद्गलों के परिणामरूप होने से काले पुद्गलों की राजि= रेखा। मेघराजि= काले मेघ की रेखा के सदृश। मघा= छठी नरक के समान अन्धकार वाली। माघवती= आठवीं नरक के समान गाढान्धकार वाली। वातपरिधा= आंधी के समान सघन अन्धकार वाली और दुर्लघ्य। वातपरिक्षोभा=आंधी के समान अन्धकार वाली और शोभजनक। देवपरिधा= देवों के लिए दुर्लघ्य। देवपरिक्षोभा= देवों के लिए शोभजनक।

परौ नन्दीश्वराम्भोधेररुणद्वीप सागरौ।

अन्धकार पुनः सिन्धोर्ब्रह्मलोकान्तमाश्रितः ॥(683)

(हरिवंश पु. पृ. 116)

नन्दीश्वर समुद्र से आगे अरुण द्वीप तथा अरुण सागर है वहाँ समुद्र से लेकर ब्रह्मलोक के अन्त तक अन्धकार ही अन्धकार है।

मृदङ्गसदृशाकाराः कृष्णराज्यो विजृम्भिताः।

अष्टौ तप घनाकारा बहिस्तस्य व्यवस्थितः ॥(684)

अरुण समुद्रके बाहर मृदंग के समान आकारवाली घनाकार आठ वाली पंक्तियाँ फैली हुई हैं।

अस्मिन्नल्पर्द्धयो देवा दिग्मूढात्रिरमासते।

महर्द्धिकसुरैः सार्धं कुर्युस्तद्धार्षिलङ्घनम् ॥(685)

अल्पऋद्धि के धारी देव इस अन्धकार में दिशा मूढ़ हो घिरकाल तक भटकते

रहते हैं। वे बड़ी ऋद्धि के धारक देवों के साथ ही इस समुद्र को लाँघ सकते हैं।

स्थानांग सूत्र में भी तमस्कन्द का विशेष वर्णन निम्न प्रकार से पाया जाता है-

तमुक्कायस्स णं चत्तारि नामधेज्जा पण्णत्ता,

तं जहा-तमिइव, तमुक्काएइ वा,

अप्पकारेइ वा, महधकारेइ वा।

तमुक्कायस्स णं धत्तारिणामधेज्जा पण्णत्तां, तंजहा-लोगंधगारेइवा,

लोगतमसेइ वा, देवंधगारेइ वा, देवतमससेइ वा।

तमुक्कायस्स णं चत्तारि णामधेज्जा पण्णत्तां, तं जहावायफलहेइवा,

वायफलहखोभेइ वा, देवरन्नेइ वा, देवपूढेइ वा।

तमुक्काए णं चत्तारि कप्पे आवरित्ता चिट्ठइ, तं जहासोहम्मोसाणं,

सणं - कुमारमाहिदं।

तमस्काय के चार नाम हैं, जैसे- तम, तमस्काय, अन्धकार और महान्धकार।

तमस्काय के चार नाम हैं, जैसे- लोकान्धकार, लोकतम, देवान्धकार और देवतम।

तमस्काय के चार नाम हैं जैसे- वातपरिध, वातवपरिधक्षोभ, देवारण्य और

देवव्यूह। तमस्काय ऊपर चार कल्पों को आवृत्त किये हुए है, जैसे- सौधर्म, ईशान,

सनत्कुमार और माहेन्द्र।

प्रस्तुत सूत्र में तमस्काय का अस्तित्व, उसके सार्थक नाम और उसके फैलाव का वर्णन है। अप्काय के परिणाम रूप अंधकार को यहां तमस्काय कहा है। जम्बूद्वीप से पूर्व आदि किसी भी दिशा की ओर यदि गमन किया जाए तो संख्यात द्वीपसमूह उल्लंघन करने पर अरुणवर द्वीप आता है, उसके चारों ओर अरुणोद समुद्र है अरुणवद्वीप की जगती से बयालिस हजार योजन अरुणोद समुद्र में जाकर तमस्काय का प्रारम्भ होता है। घन रूप से उठी हुई धुँध को तमस्काय कहते हैं उसका व्यास असंख्यात योजन परिमाण है। यह 1721 योजन परिमाण दीवार की तरह ऊपर जाकर तिरछी दिशा में विस्तृत होती हुई सौधर्म, ईशान, सनत्कुमार और माहेन्द्र इन चार देवलोकों की बाहर से आवर्तन करती हुई पाँचवे ब्रह्म देवलोको के रिष्ट विमान प्रस्तर तक विस्तृत हुई है।

सूत्रकार ने उसके सार्थक नामों का उल्लेख किया है। आठ नाम तो दो सूत्रांशों में तम शब्द को लक्ष्य करके कहे गए हैं। तीसरे सूत्रांश में तमस्काय की विशेष शक्ति का परिचय दिया गया है। देवों की अपनी तथा उनके वरत्त तथा आभूषणों की

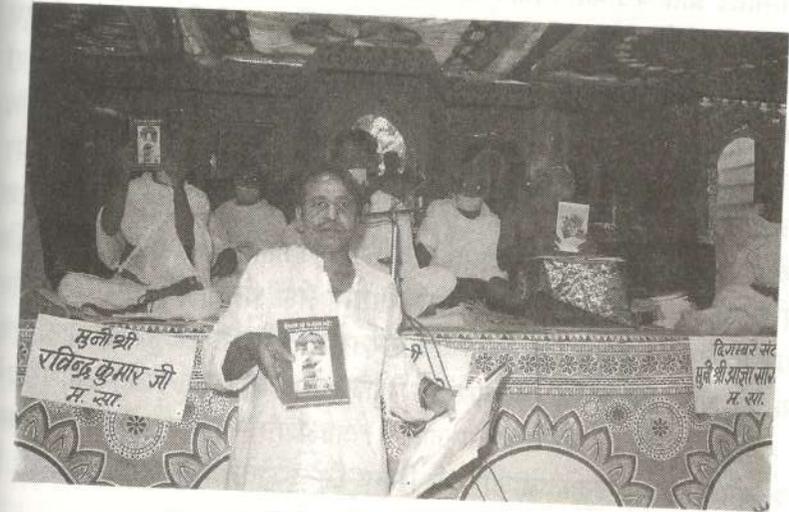
दिव्य- प्रभा भी उस तमस्काय में नष्ट हो जाती हैं कहने को तो यहां तक भी कहा जाता है कि देव भी अपने से बलवान देव से भयभीत होकर उस अंधकार में छुप जाता है। कहा भी है 'ते बलवतो भयेन वत्त नश्यन्तीति श्रुति।'

लोकान्धकार नाम इसलिये सार्थक माना गया है कि उसमें जितना अंधेरा होता है उतना अंधेरा अन्य किसी स्थान में नहीं होता।

बाहर की वायु उसमें प्रविष्ट नहीं होती अतः उसे वातपरिध कहा गया है। जिसके साथ वायु टकराती हुई सक्षोभ स्वलित हो जाती है उसे वातपरिक्षोभ कहते हैं। इसको देवारण्य भी कहते हैं यह महाटवी की भांति अपराधी देवों के छिपने का स्थान है। सांग्रामिक व्यूहरचना की तरह वह दुर्गम है, इसलिये इसे देवव्यूह भी कहते हैं।

तमस्काय का आकार अधोभाग में जैसे मल्लक (मिट्टी का प्याला) के मूल का आकार होता है वैसा आकार मूल भाग में है और ऊर्ध्वभाग में वह कुक्कुट पंजराकार के तुल्य अतिविस्तार वाला है।

महाराणा प्रताप की कर्मभूमि हल्दीघाटी में भ. महावीर के २६०१वें जन्मकल्याणक महोत्सव का जैन एकता के भव्य आयोजन में आ. कनकनंदीजी के साहित्य का विमोचन करते हुए श्री मांगीलालजी मादरेचा



अध्याय-7

वैज्ञानिक दृष्टि से विश्व (लोक)

किसी रात जब आकाश में चंद्रमा उदित न हुआ हो तब हम आकाश पर नजर डालें तो हमें दिखेगी आकाश पर फैली एक प्रकाशित पट्टी, जिसमें मंद-मंद टिमटिमाते तारे होंगे। हम यह भी महसूस करेंगे कि इस पट्टी की चौड़ाई सब जगह एक जैसी नहीं होगी, कहीं-कहीं तो इनमें बड़े-बड़े धब्बे भी दिखेंगे। तारों की इस चमकती पट्टी को देखकर हमें ऐसा लगेगा मानो आकाश में दूध की एक नदी बह रही हो। इसे आकाशगंगा कहते हैं। किसी अन्य ग्रह पर जाकर देखेंगे तो हमारी यह पृथ्वी एक छोटे से प्रकाश बिन्दु या तारे की तरह ही चमकती दिखाई देगी। शायद हमें जानकर आश्चर्य होगा कि आकाश में दिखाई पड़ने वाले इन छोटे टिमटिमाते तारों में से अधिकांश तो पृथ्वी से भी काफी बड़े हैं। जिस तरह धरती सूर्य की परिक्रमा करती है वैसे ही ये सब तारे भी आकाश में बड़ी तेजी से दौड़ते-भागते रहते हैं। हालांकि हमें इसका अहसास नहीं होता। इस कारण हम हजारों वर्ष के बाद ही यह बता सकते हैं कि वास्तव में तारा थोड़ा किस और खिसका है। हम सभी इस पृथ्वी की सतह पर सवार होकर लगभग 1500 किलोमीटर प्रति घंटे की रफ्तार से दौड़ते जा रहे हैं, पर हमें यह महसूस नहीं होता। वास्तव में यह धरती एक अंतरिक्ष यान की तरह है जिस पर रहते हुए हम अनंत ब्रह्मांड में निरंतर तेजी से चक्कर लगाते रहते हैं। पृथ्वी सूर्य के चारों तरफ दीर्घ-वृत्ताकार कक्षा में घूमती है— एक सर्पिल कक्षा पर। इसी से अन्य आकाशीय पिंडों, तारों की ही भांति हमारी पृथ्वी भी अंतरिक्ष में जिस बिंदु पर एक बार रहती है उस पर दुबारा नहीं लौटती। इस तरह वह जहां आज है ठीक एक साल बाद दस अरब किलोमीटर दूरी होगी। कितना आश्चर्यजनक है कि हम इतनी यात्रा प्रतिवर्ष करते हैं पर हमें पता नहीं चलता। वास्तव में ब्रह्मांड स्थिर नहीं रहता, इसमें सब कुछ सदैव निरंतर गतिशील रहता है। हर तारा एक सूर्य की भांति है। अनेक ऐसे तारे भी हैं जिनके प्रकाश को पृथ्वी तक पहुंचने में हजारों, लाखों, खरबों वर्ष लग जाते हैं। आकाश में तारे अरबों-खरबों साल तक बने रहते हैं। उनके आकार भी भिन्न-भिन्न होते हैं। कुछ तारे तो ऐसे हैं कि उनके आकार की कल्पना करना काफी कठिन है।

उदाहरण के लिए ज्येष्ठा (अंतरिक्ष) वृश्चिक नक्षत्र का तारा है जिसका व्यास 45 करोड़ किलोमीटर यानी सूर्य के व्यास से 320 गुने से भी अधिक। जैसे इससे भी बड़े आकार वाले तारे आकाश में हैं जैसे— आर्द्रा, जिसका व्यास 65 करोड़ किलोमीटर और आयतन ज्येष्ठा तारे से तीन गुना अधिक है। पुराने जमाने में इसके बारे में कई अटकले भी थीं कि आकाशगंगा अंतरिक्ष में बिखरा हुआ द्रव्य है। यानी एक प्रकार की सूक्ष्म धूल और बाष्प, किंतु यह अटकल सही नहीं थी क्योंकि द्रव के ऐसे समूह पुंजों को खगोल विज्ञानियों ने नीहारिका के रूप में पहचाना। नीहारिका मंद-मंद चमकते कोहरे सी दिखाई पड़ती है। वैसे ब्रह्माण्ड में नीहारिकाएं तो हैं, किंतु आकाशगंगा नीहारिका नहीं है। वह तो वास्तव में एक महान् तारा प्रणाली है, जिसमें सभी एक-दूसरे से गुरुत्वाकर्षण से बंधे रहते हैं। इसे मंदाकिनी या गैलेक्सी कहा जाता है।

गैलेक्सी यूनानी शब्द 'गलाक्टिकोस' से बना है जिसका अर्थ है— दूधिया। मंदाकिनी अनगिनत तारों से बनी है, उसके मध्य भाग में तारे काफी घने हैं और किनारे के ओर से वे कम होते गए हैं। इस मंदाकिनी के केंद्र से लगभग दो-तिहाई दूरी पर एक पीला-सा तारा है यह है हमारा सूर्य जिसके चारों तरफ दीर्घ वृत्ताकार रूप में पृथ्वी और अन्य ग्रह परिक्रमा करते रहते हैं। पृथ्वी के कृत्रिम उपग्रह, ग्रह, धूमकेतु आदि को मिलाकर 'सौर परिवार' कहा जाता है। ये तारे एक दूसरे से कितने दूर हैं इसकी नाप हम जिस संख्या या विधि से करते हैं उसे प्रकाश वर्ष कहा जाता है। यानी प्रकाश एक वर्ष में जितनी दूरी तय करता है उसे एक प्रकाश वर्ष कहा जाता है और यह दूरी लगभग 60 खरब मील होती है और आकाश गंगा के ये तारे पृथ्वी से हजारों प्रकाश वर्ष की दूरी पर हैं। आकाश गंगा ब्रह्मांड रूपी महासागर में एक विशाल महाद्वीप की तरह है और ब्रह्मांड में असंख्य आकाश गंगाएँ हैं। वैसे आकाशगंगा असीम नहीं है, उसकी भी सीमा है परंतु वह अंतरिक्ष में इस तरह से व्याप्त है कि इसके एक छोर से दूसरे छोर तक पहुँचने में प्रकाश की एक किरण को एक लाख साल लगते हैं। आकाश गंगा में अरबों, खरबों तारे हैं और वे एक-दूसरे को गुरुत्वाकर्षण शक्ति से सदैव आकर्षित करते रहते हैं।

आकाशगंगा एक केंद्र के इर्द-गिर्द घूमती है। सूर्य आकाशगंगा के केंद्र में नहीं है, वह वहां से लगभग 30 हजार प्रकाश वर्ष की दूरी पर है। ब्रह्मांड में सूर्य

भी एक स्थान पर स्थिर नहीं रहता, वह भी एक दीर्घवृत्त में घूमता रहता है और वह लगभग दो करोड़ वर्ष में आकाशगंगा के केंद्र के इर्द-गिर्द एक परिक्रमा वैसे ही पूरी करता है जैसे पृथ्वी एक साल में सूर्य की परिक्रमा पूरी करती है। आकाशगंगा में सूर्य की कक्षा इतनी विशाल है कि उसका यदि बहुत बड़ा खंड भी लिया जाए (उदाहरण के लिए वह मार्ग जो सूर्य 1000 साल में पूरा करता है) तो वह एक सीधी रेखा की तरह होगा सूर्य के घूमने की गति 300 किलोमीटर प्रति सैकंड या 10 लाख किलोमीटर प्रति घंटे है। सूर्य अपनी परिक्रमा पूरे सौर परिवार को साथ लेकर करता है। ब्रह्मांड में अनंत मंदाकिनियां हैं और हमारी आकाशगंगा उनमें से मात्र एक है। ब्रह्मांड में सबसे नजदीकी मंदाकिनी को खगोल-विज्ञानी देवयानी मंदाकिनी के नाम से जानते हैं। यह सबसे निकटस्थ होने के बावजूद इतनी दूर है कि इसके प्रकाश की एक किरण को पृथ्वी तक आने में लग जाते हैं पूरे पंद्रह लाख वर्ष लगे जाते हैं।

— (गोपाल गुप्त)

महानों को समझने की योग्यता क्षुद्रों में नहीं

सामान्य स्तर के व्यक्तियों की बौद्धिक, वैचारिक, भावनात्मक स्तर, उद्देश्य, कार्य, अनुभव, क्षेत्र, ज्ञानद्रष्टि आदि की सीमा संकीर्ण, क्षुद्र, छोटी एवं खोटी होती है। अतः असामान्य स्तर के व्यक्तियों को सामान्य स्तर के व्यक्तियों के व्यक्तित्व से प्रभावित होकर कोई भी कार्य विचार आदि नहीं करना चाहिए। विशाल से विशाल सभागार में भी क्या समस्त आकाश को समेट कर रख सकते हैं? कदापि नहीं। भले सभागार में भी आकाश है तो भी अनंत आकाश उसमें समाहित नहीं हो सकता है। इसी प्रकार असामान्य व्यक्तियों को अपनी योग्यता, क्षमता, कार्य प्रणाली सामान्य स्तर के व्यक्तियों की योग्यता आदि से नहीं समेटना चाहिये। जिस प्रकार अनंत आकाश का भी छोटा भाग सभागार में है और आकाश सभागार का विरोध न करके उसका भी आधार बनता है उसी प्रकार असामान्य व्यक्तियों का व्यवहार सामान्य व्यक्तियों के साथ होना चाहिए। जैसाकि तीर्थकरादि महामानव सामान्य व्यक्ति के अनुसार कार्य नहीं करते हुए भी उसके उद्धार के लिए भी उपदेश करते हैं।

— आ. श्री कनकनंदीजी गुरुदेव

अध्याय-8

विज्ञान की अपेक्षा तमस्काय ब्लैक होल (Black Hole)

बीसवीं शताब्दी के खगोलशास्त्रियों ने अंतरिक्ष में कुछ काल क्षेत्रों की संभावना व्यक्त की है, जो विशाल तारों के समाप्त हो जाने पर बनते हैं। अंतरिक्ष के इन काले क्षेत्रों को ही ब्लैक होल के नाम से जाना जाता है। ब्लैक होल के अंदर गुरुत्वाकर्षण बल इतना अधिक होता है कि कोई भी वस्तु जो इसमें अंदर चली जाए बाहर नहीं आ सकती। यहां तक कि प्रकाश भी ब्लैक होल के विशाल गुरुत्वबल के कारण बाहर नहीं निकल सकता। इससे कोई भी विकिरण (Radiation) नहीं होता।

ब्लैक होल्स के अस्तित्व की संभावना का अनुमान सर्वप्रथम सन् 1907 में जर्मनी के खगोलशास्त्री कार्ल स्वार्जचाइल्ड (Karl Schwarzschild) ने व्यक्त किया था। उन्होंने बताया कि इनका जन्म ऐसे तारों के समाप्त होने से होता है, जो सूर्य से भी बड़े होते हैं। ब्लैक होल का बनना इस प्रकार समझा जा सकता है।

हम एक ऐसे तारे की कल्पना करते हैं, जो सूर्य से बड़ा है। इसके केंद्र का तापमान बहुत अधिक होता है, जिसके कारण तारे में उपस्थित पदार्थ फैलने की कोशिश करता है। लेकिन इसका गुरुत्व बल इसे एक निश्चित सीमा से अधिक नहीं फैलने देता। तापमान के कारण होने वाले फैलाव और गुरुत्व बल के द्वारा होने वाले सिकुड़ाव के संतुलन में ही तारे का आकार निश्चित होता है।

अब मान लीजिए कि किसी स्थिति में तारे के अंदर का ईंधन कम होना शुरू हो जाए तो इसके अंदर का तापमान कम होने लगेगा। परिणाम यह होगा कि प्रसार या फैलाव बल की अपेक्षा गुरुत्वबल अधिक हो जाएगा और तारा सिकुड़ना शुरू कर देगा।

सिकुड़ने की इस क्रिया में तारे के पदार्थ के परमाणु इलेक्ट्रॉन, प्रोटॉन और न्यूट्रॉनों में टूट जाते हैं। इलेक्ट्रॉनों पर ऋण आवेश होता है। ऋण आवेशों के बीच में प्रतिकर्षण (Repulsion) होता है। यह प्रतिकर्षण बल गुरुत्व बल के

विपरीत क्रिया करता है और परिणाम यह होता है कि तारे का और अधिक सिकुड़ना रुक जाता है। इस स्थिति में बने तारे को व्हाइट ड्वार्फ (White Dwarf) कहते हैं। व्हाइट ड्वार्फ का आकार मूल तारे का लगभग 100वां हिस्सा रह जाता है। आकार के कम होने से गुरुत्व बल लगभग 100 गुना अधिक हो जाता है।

अब यदि किसी कारण से गुरुत्व बल इलेक्ट्रॉन प्रतिकर्षण बल से अधिक हो जाता है, तो तारे का आकार और भी कम होने लगता है। इसका परिणाम यह होता है कि तारे के अंदर इलेक्ट्रॉन और प्रोटोन मिलकर न्यूट्रॉन में बदलने लगते हैं। इस प्रकार से बने तारे को न्यूट्रॉन स्टार कहते हैं। इसका आकार ड्वार्फ स्टार की तुलना में 500 वां हिस्सा ही रह जाता है। अब इसका गुरुत्व बल मूल बल से दस अरब गुना अधिक हो जाता है।

न्यूट्रॉन स्टार से प्राकश निकलने के कारण इसकी उर्जा कम होती जाती है, जिससे इसका आकार और भी छोटा होता जाता है और गुरुत्व बल बढ़ता जाता है। एक स्थिति ऐसी आ जाती है, जबकि इससे प्राकश निकलना बंद हो जाता है। यही ब्लैक होल कहलाता है।

अभी तक वैज्ञानिक ब्लैक होल्स साक्षात् रूप में नहीं देख पाए हैं, लेकिन ये उनके अस्तित्व की वास्तविकता का पता लगाने में जुटे हुए हैं। ब्लैक होल्स के नजदीक के क्षेत्रों से आने वाली एक्स किरणें और अवरक्त किरणें इस बात का सबूत हैं कि ब्लैक होल्स का अंतरिक्ष में अस्तित्व है।

गैस और धूल खाकर बढ़ते हैं ब्लैक होल

ब्रह्माण्ड में अनेक आकाशगंगाएँ होती हैं। इन आकाश गंगाओं के केंद्र में छोटे भारी और काले पिंड होते हैं। इस तरह का एक पिंड सूर्य के द्रव्यमान से भी 1 अरब गुना भारी होता है फिर भी यह जो जगह घेरेगा वह हमारे सौर परिवार से ज्यादा नहीं होगी। विशेषज्ञ इनके बारे में अभी तक यही पता कर पाये हैं कि अनूठी खूबियों वाले ये महापिंड ब्लैक होल्स हैं। यह हमारी आकाश गंगाओं के केंद्र में कहाँ से और कैसे आ गये, इस बारे में अधिक नहीं जाना जा सका है। खगोल वैज्ञानिकों ने यह प्रमाण जुटा लिया है कि ब्रह्माण्ड में आकाश गंगाओं के केंद्र में मौजूद ब्लैक होल्स यानी कृष्ण विवर धीरे-धीरे गैस और धूल

खाकर अपना वजन बढ़ा लेते हैं।

ब्लैक होल— ब्रह्माण्ड की सबसे ज्यादा गुरुत्वाकर्षण वाली संरचना है। ब्लैक होल का गुरुत्वाकर्षण इतना अधिक होता है कि कोई टोस, द्रव्य या गैस यहाँ तक कि प्राकश भी यदि इसके आस-पास से गुजरता है तो यह ब्लैक होल में खिंचकर चला जाता है।

गुरुत्वाकर्षण बल सभी चीजों को अपने धरातल की तरफ खींचता है। गुरुत्वाकर्षण बल का संबंध द्रव्यमान और घनत्व से होता है। ब्लैक होल या कृष्ण विवर का गुरुत्वाकर्षण प्रचंड होने का कारण इनका घनत्व बहुत अधिक होता है, इसमें बहुत बड़ा द्रव्यमान अत्यंत छोटे आयतन में संकुचित हो जाता है। सो, संकुचन से इन पिण्डों का घनत्व बहुत ज्यादा हो जाता है। इसका अंदाजा हम इसी से लगा सकते हैं कि यदि हमारी पृथ्वी जो इतनी विशाल है, ब्लैक होल बन जाए तो यह एक चम्मच के बराबर आयतन में आ जाएगी। देखने में तो यह इतनी छोटी लगेगी परंतु तब प्राकश भी इसके पास से न गुजर पायेगा।

आकाश गंगाओं की आयु जानने के लिए वैज्ञानिक तारों से आते हुए प्राकश का विश्लेषण करते हैं क्योंकि अलग-अलग उम्र के इन पिंडों से अलग-अलग गुणों वाला प्राकश आता है। इस तकनीक का उपयोग करके वैज्ञानिकों ने आस-पास की 23 आकाश गंगाओं की उम्र मालूम की है इनमें एण्ड्रोमेटा जैसी सुपरिचित आकाश गंगा शामिल है (जिसके बारे में पता चला है कि उसके केंद्र में ब्लैक होल्स हैं)। किसी भी ब्लैक होल का बुनयादी गुण यह है कि उसमें जब भी कोई सामग्री गिरती है तो वह फिर वापस नहीं आती। आसपास की आकाश गंगाओं की जो गैस और धूल गुरुत्व बल से खिंचकर आयी और ब्लैक होल्स में जा गिरी वह फिर वापस नहीं लौटी और इसी को पचा-पचाकर जैसे-जैसे इनकी उम्र बढ़ी यह मोटे भी होते गये। (रिचर्ड लेविक)

ब्लैक होल भंवर की तरह घूमते हैं

अंतरिक्ष में अत्यधिक शक्तिशाली शून्य या निर्वात क्षेत्र माने जाने वाले ब्लैक होल अपनी ओर आने वाली किसी भी वस्तु को चट करने के साथ-साथ घूमते भी हैं।

अमरीकी अंतरिक्ष एजेंसी नासा के वैज्ञानिकों का कहना है कि अंतरिक्ष में

मौजूद गैस, कण व अन्य सामग्री को अपनी ओर आकर्षित करने वाले ब्लैक होल ब्रह्माण्ड की अन्य रचनाओं—ग्रहों, तारों व आकाश गंगाओं की तरह चक्कर लगाते होंगे। ब्लैक होल की अंदरूनी संरचना को अब तक देखा नहीं जा सका है। इनकी गुरुत्वाकर्षण शक्ति इतनी जबर्दस्त होती है कि कोई भी वस्तु यहां तक कि रोशनी भी इसके आर-पार नहीं जा सकती है। इस अबूझ रहस्य को जानने के लिए नासा के गोडार्ड उडान केंद्र के वैज्ञानिकों ने ब्लैक होल के मुहं पर गिरती वस्तु की गतिविधियों पर ध्यान केंद्रित किया। वैज्ञानिकों ने देखा कि ब्लैक होल के शून्य में विलीन होने के पहले यह वस्तु ठीक उसी तरह घूमी जैसे कि पानी का भंवर बनता है। केंद्र के वैज्ञानिक टॉड स्ट्रोहमेयर का कहना है कि ब्लैक होल की सतह ठोस नहीं होती लेकिन उसमें समाती वस्तु से उत्सर्जित प्रकाश के अध्ययन से उनके भंवर की तरह घूमने का संकेत मिलता है। इससे पूर्व इसी एक्स-रे विकिरण की मदद से वैज्ञानिक अंतरिक्ष में परिक्रमा करनेवाले सबसे कम घनत्व वाले न्यूट्रोन तारों के घूर्णन का पता लगा चुके थे।

अधिकतर तारे ब्लैक होल में समा जायेंगे

सौ से अधिक वैज्ञानिकों के एक दल ने तीस वर्ष की मेहनत के बाद ब्रह्माण्ड के भाग्य विधाता 'भुतहा' और 'फरार' न्यूट्रिनोस कण के रहस्य की जटिल गुल्मी सुलझाने में सफलता हासिल की है।

यह क्रांतिकारी खोज ब्रह्माण्ड के अब तक ज्ञात सिद्धांतों को पलट सकती है। अमरीका, कनाडा एवं ब्रिटेन के खगोल व भौतिकीविदों ने कनाडा के सडबरी में सतह से एक मील नीचे बनी दस मंजिला प्रयोगशाला में इस न्यूट्रिनोस कण की फितरत को परखा और लिख दी ब्रह्माण्ड के भाग्य की नहीं कुण्डली। इसके अनुसार आकाशगंगा, तारे और ग्रहों की राशि बताती है कि ये बड़ी तेजी से एक-दूसरे का साथ छोड़ते हुए अनंत में विलीन होने की ओर अग्रसर हैं। अंततः ये नष्ट होकर परमाणु कणों और गैस में तब्दील हो जाएंगे। खगोलविदों का मानना है कि अधिकतर तारे ब्लैक होल की गहराई में समा जाएंगे और विस्फोट से खाक हो जाएंगे। रह जाएगा एक सुप्त अनंत ब्रह्माण्ड लेकिन इस अवस्था में भाग्य-विधाता न्यूट्रिनोस कणों का बाल भी बांका नहीं होगा।

न्यूट्रिनोस कण ब्रह्माण्ड के सुपरनोवा व बिग बैंग जैसे गर्म स्थानों पर कई

खरबों की संख्या में उत्पन्न होते हैं। इनमें विद्युतिक आवेश नहीं होता। इनका आकार इतना सूक्ष्म होता है कि अन्य तत्वों के पास से ये बिना छेड़-छाड़ के गुजर जाते हैं। 1930 में भौतिकी विज्ञानिक वोल्फ गेंग पाँली ने सर्वप्रथम इनकी खोज भार विहीन कण के रूप में की थी। 1956 में वैज्ञानिकों के हाथ न्यूट्रिनोस कण पहला लगा जो कि मानव की सूक्ष्म कल्पना से भी सूक्ष्मतरंग था। अनुमान लगाया गया कि ब्रह्माण्ड के अनजान भार का रहस्य इन्हीं कणों के गर्भ में है और वहां मौजूद कुल तत्व का 3 प्रतिशत भार मात्र है। सडबरी वेधशाला के वैज्ञानिकों ने पाया कि सूर्य के केंद्र में आणविक क्रियाओं से उत्पन्न ये कण पृथ्वी की 9.3 करोड़ मील लंबी यात्रा के दौरान कई रूप धारण करते हैं। सिर्फ भार कण ही स्वरूप बदल सकते हैं इसलिए न्यूट्रिनोस को भी भार कण माना गया। ऐसा माना जाता है कि ब्रह्माण्ड में रहस्यमयी काले तत्व का 18% भाग ये कण ही हैं। जिसे कभी किसी दूरबीन या अन्य माध्यम से देखा नहीं जा सका।

परियोजना निदेशक डॉ. आर्ट मेकडोनाल्ड के अनुसार अलग-अलग कणों का भार कोई मायने नहीं रखता लेकिन सबको मिलाकर जो भार बनेगा वह कायापलट कर सकता है। हालांकि इनकी संख्या बेशुमार है परंतु भार सीमा दर्शाती है कि ब्रह्माण्ड के कुल भार व ऊर्जा का बहुत न्यून अंश है। इसका अर्थ है कि इनमें ब्रह्माण्ड को फैलाने से रोकने की ताकत नहीं है। ऐसे में ब्रह्माण्ड चिरकाल तक विस्तार करेगा और तारा विहीन होकर विसरित गैस से भर जाएगा। इस खोज ने ब्रह्माण्ड के सभी तत्वों को समा कर तथा बिग बैंग महाविस्फोट की तर्ज पर धमाके के साथ बिखर कर पुनर्जन्म के महागर्जन सिद्धांत को भी उलट दिया है।

प्रिन्सटन विश्वविद्यालय के नक्षत्रविद् प्रो. स्कॉट ट्रेमाँइन के अनुसार इस सवाल का जवाब मिल गया कि न्यूट्रिनोस में सभी तत्वों की खींचकर एक सूत्र में बांधने की ताकत नहीं है। परियोजना के तहत 1 हजार टन भारी पानी से भरे विशालकाय एक्रिलिक बुलबुले में कण के पानी के अणुओं से विभिन्न क्रियाओं के परिक्षण किए गए।



The Quantum Mechanics of Black Holes

The great extension of astronomical observations that began early in the 1960 brought about a revival of interest in the classical theory of general relativity because it seemed that many of the new phenomena that were being discovered, such as quasars, pulsars, and compact X-ray sources, indicated the existence of very strong gravitational fields - fields that could be described only by general relativity. Quasars are starlike objects that must be many times brighter than entire galaxies if they are as distant as the reddening of their spectra indicates; pulsars are the rapidly blinking remnants of supernova explosions, believed to be ultradense neutron stars; compact X-ray sources, revealed by instruments aboard space vehicles, may also be neutron stars or may be hypothetical objects of still higher density, namely black holes.

One of the problems facing physicists who sought to apply general relativity to these newly discovered or hypothetical objects was to make it compatible with quantum mechanics. Within the past few years there have been developments that give rise to the hope that before too long we shall have a fully consistent quantum theory of gravity, one that will agree with general relativity for microscopic objects and will, one hopes, be free of the mathematical infinities that have long bedevilled other quantum field theories. These developments have to do with certain recently discovered quantum effects associated with black holes, which provide a remarkable connection between black holes and the laws of thermodynamics.

Let me describe briefly how a black hole might be created. Imagine a star with a mass ten times that of the Sun. During most of its lifetime of about a billion years, the star will

generate heat at its centre by converting hydrogen into helium. The energy released will create sufficient pressure to support the star against its own gravity, giving rise to an object with a radius about five times the radius of the Sun. The escape velocity from the surface of such a star would be about, 1000 Kilometres per second. That is to say, an object fired vertically upwards from the surface of the star with a velocity of less than 1000 kilometres per second would be dragged back by the gravitational field of the star and would return to the surface, whereas an object with a velocity greater than that would escape to infinity.

When the star had exhausted its nuclear fuel, there would be nothing to maintain the outward pressure, and the star would begin to collapse because of its own gravity. As the star shrank, the gravitational field at the surface would become stronger and the escape velocity would increase. By the time the radius had got down to 30 kilometres, the escape velocity would have increased to 300,000 kilometres per second, the velocity of light. After that time any light emitted from the star would not be able to escape to infinity but would be dragged back by the gravitational field. According to the special theory of relativity, nothing can travel faster than light, so that if light cannot escape, nothing else can either.

The result would be a black hole a region of space-time from which it is not possible to escape to infinity. The boundary of the black hole is called the event horizon. It corresponds to a wave front of light from the star that just fails to escape to infinity but remains hovering at the schwarzschild radius : $2 GM/c^2$ where G is Newton's constant of gravity, M is the mass of the star, and C is the velocity of light for a star of about ten solar masses, the schwarzschild radius is about thirty kilometres.

There is now fairly good observational evidence to suggest that black holes of about this size exist in double star systems such as the X-ray source known as Cygnus X-1. There might also be quite a number of very much smaller black holes scattered around the universe, formed not by the collapse of stars but by the collapse of highly compressed regions in the hot, dense medium that is believed to have existed shortly after the big bang in which the universe originated. Such 'Primordial' black holes are of greatest interest for the quantum effects I shall describe here. A black hole weighing a billion ton (about the mass of a mountain) would have a radius of about 10^{-13} centimetres (the size of a neutron or a proton). It could be in orbit either around the Sun or around the centre of the galaxy.

The first hint that there might be a connection between black holes and thermodynamics came with the mathematical discovery in 1970 that the surface area of the event horizon, the boundary of a black hole, has the property that it always increases when additional matter or radiation falls into the black hole. Moreover, if two black holes collide and merge to form a single black hole, the area of the event horizon around the resulting black hole is greater than the sum of the areas of the event horizons around the original black holes. These properties suggest that there is a resemblance between the area of the event horizon of a black hole and the concept of entropy in thermodynamics. Entropy can be regarded as a measure of the disorder of a system or, equivalently, as a lack of knowledge of its precise state. The famous second law of thermodynamics says that entropy always increases with time.

The analogy between the properties of black holes and the laws of thermodynamics has been extended by James M. Bardeen of the University of Washington, Brandon Carter,

who is now at the Meudon observatory, and me. The first law of thermodynamics says that a small change in the entropy of a system is accompanied by a proportional change in the energy of the system. The factor of proportionality is called the temperature of the system. Bardeen, Carter and I found a similar law relating the change in mass of a black hole to a change in the area of the event horizon. Here the factor of proportionality involves a quantity called the surface gravity, which is a measure of the strength of the gravitational field at the event horizon. If one accepts that the area of the event horizon is analogous to entropy, then it would seem that the surface gravity is analogous to temperature. The resemblance is strengthened by the fact that the surface gravity turns out to be the same at all points on the event horizon, just as the temperature is the same everywhere in a body at thermal equilibrium.

Although there is clearly a similarity between entropy and the area of the event horizon, it was not obvious to us how the area could be identified as the entropy of a black hole. What would be meant by the entropy of a black hole? The crucial suggestion was made in 1972 by Jacob D. Bekenstein who was then a graduate student at Princeton University and is now at the University of the Negev in Israel. It goes like this. When a black hole is created by gravitational collapse, it rapidly settles down to a stationary state that is characterized by only three parameters: the mass, the angular momentum and the electric charge. Apart from these three properties the black hole preserves no other details of the objects that collapsed. This conclusion, known as the theorem 'A black hole has no hair', was proved by the combined work of Carter, Werner Israel of the University of Alberta, David C. Robinson of King's College, London and me.

The no-hair theorem implies that a large amount of information is lost in a gravitational collapse. For example, the final black-hole state is independent of whether the body that collapsed was composed of matter or antimatter, and whether it was spherical or highly irregular in shape. In other words, a black hole of a given mass, angular momentum and electric charge could have been formed by the collapse of any one of a large number of different configurations of matter. Indeed, if quantum effects are neglected, the number of configurations would be infinite. Since the black hole could have been formed by the collapse of a could of an indefinitely large number of particales of indefinitely low mass.

The uncertainty principle of quantum mechanics implies, however, that a particle of mass M behaves like a wave of wavelength h/mc , where h is planck's constant (the small number 6.62×10^{-27} erg second) and C is the velocity of light. In order for a could of particles to be able to collapse to form a black hole, it would seem necessary for this wavelength to be smaller than the size of the black hole that would be formed. It therefore appears that the number of configurations that could form a black hole of a given mass, angular momentum and electric charge although very large, may be finite. Bekenstein suggested that one could interpret the logarithm of this number as the entropy of a black note. The logarithm of the number wold be a measure of the amount of information that was irretrievably lost during the collapse through the event horizon when a black hole was created.

The apparently fugal flaw in Bekensteins's suggestion was that if a black hole has a finite entropy that is proportional to the area of its event horizon it also ought to have a finite temperature, which would be proportional to its surface gravity. This would imply that a black hole could be in

equilibrium with thermal radiation at some temperature other than zero. Yet according to classical concepts no such equilibrium is possible, since the black hole would absorb any thermal radiation that fell on it but by definition would not be able to emit anything in return.

This paradox remained until early 1974, when I was investigating what the behaviour of matter in the vicinity of a black hol would be according to quantum mechanics. To my great surprise, I found that the black hole seemed to emit praticles at a steady rate. Like everyone else at that time, I accepted the dictum that a black hole could not emit anything. I therefore put quite a lot of effort info trying to get rid of this embarrassing effect. It refused to go away, so that in the end I had to accept it. What finally convinced me that it was a real physical process was that the outgoing particles have a spectrum that is precisely thermal, the black hole creates and emits particles just as if it were an ordinary hot body with a temperature that is proportional To the surface gravity and inversely proportional to the mass. This made Bekensteins' syggestion that a black hole had a finite entropy fully consistent, since it implied that a black hole could be in thermal equilibrium at some finite temperature other than zero.

Since that time, the mathematical evidence that black holes can emit thermally has been confirmed by a number of other people with various different approaches. One way to understand the emission is as follows. Quantun mechanics implies that the whole of space is filled with pairs of 'virtual' particles and antiparticles that are constantly materializing in pairs, separating, and then coming together again and annihilating each other. These particles are called virtual because, unlike 'real' particles, they cannot be observed directly with a particles detector. Their indirect effects can

none the less be measured, and their existence has been confirmed by a small shift (the lamp sift), they produce in the spectrum of light from excited hydrogen atoms. Now, in the presence of a black hole one member of a pair of virtual particles may fall into the hole, leaving the other member without a partner with which to annihilate. The forsaken particle or antiparticle may fall into the black hole after its partner, but it may also escape to infinity, where it appears to be radiation emitted by the black hole.

Another way of looking at the process is to regard the member of the pair of particles that falls into the black hole - the antiparticle, say - as being really a particle that is travelling backwards in time. Thus, the antiparticle falling into the black hole can be regarded as a particle coming out of the black hole but travelling backwards in time. When the particle reaches the point at which the particle - antiparticle pair originally materialized, it is scattered by the gravitational field so that it travels forwards in time.

Quantum mechanics therefore allows a particle to escape from inside a black hole, something that is not allowed in classical mechanics. There are, however many other situations in atomic and nuclear physics where there is some kind of barrier that particles should not be able to penetrate on classical principles but that they are able to tunnel through on quantum mechanical principles.

The thickness of the barrier around a black hole is proportional to the size of the black hole. This means that very few particles can escape from a black hole as large as the one hypothesized to exist in Cygnus X-1, but that particles can leak very rapidly out of smaller black holes. Detailed calculations show that the emitted particles have a thermal spectrum corresponding to a temperature that increases rapidly as the

mass of the black hole decreases. For a black hole with a mass of the sun the temperature is only about a ten-millionth of a degree above absolute zero. The thermal radiation leaving a black hole with that temperature would be completely swamped by the general background of radiation in the universe. On the other hand, a black hole with a mass of only billion tons - that is, a primordial black hole, roughly the size of a proton would have a temperature of some 120 billion degrees kelvin, which corresponds to an energy of some ten million electron volts. At such a temperature a black hole would be able to create electron positron pairs and particles of zero mass, such as photons, neutrinos and gravitons (the presumed carriers of gravitational energy). A primordial black hole would release energy at the rate of 6,000 megawatts, equivalent to the output of six large nuclear power plants.

As a black hole emits particles, its mass and size steadily decrease. This makes it easier for more particles to tunnel out, and so the emission will continue at an ever-increasing rate until eventually the black hole radiates itself out of existence. In the long run, every black hole in the universe will evaporate in this way. For large black holes, however the time it will take is very long indeed; a black hole with the mass of the sun will last for about 10^{66} years. On the other hand, a primordial black hole should have almost completely evaporated in the ten billion years that have elapsed since the big bang, the beginning of the universe as we know it. Such black holes should now be emitting hard gamma rays with an energy of about 100 million electron volts.

Calculations made by Don N. Page then of the California Institute of Technology, and me based on measurements of the cosmic background of gamma radiation made by the satellite SAS-2, show that the average density of primordial black hole in the universe must be less than about two hundred

per cubic light year. The local density in our galaxy could be a million times higher than this figure if primordial black holes were concentrated in the 'halo' of galaxies the thin cloud of rapidly moving stars in which each galaxy is embedded - rather than being uniformly distributed throughout the universe. This would imply that the primordial black hole closest to the earth is probably at least as far away as the planet Pluto.

The final stage of the evaporation of a black hole would proceed so rapidly that it would end in a tremendous explosion. How powerful this explosion would be would depend on how many different species of elementary particles there are. If, as is now widely believed, all particles are made up of perhaps six different varieties of quarks the final explosion would have an energy equivalent to about ten million one - megaton hydrogen bombs. On the other hand, an alternative theory put forward by R. Hagedorn of CERN, the European organization for Nuclear Research in Geneva argues that there is an infinite number of elementary particles of higher and higher mass. As a black hole got smaller and hotter, it would emit a larger and larger number of different species of particles and would produce an explosion perhaps 100,000 times more powerful than the one calculated on the quark hypothesis. Hence the observation of a black hole explosion would provide very important information on elementary particle physics, information that might not be available any other way.

A black - hole explosion would produce a massive outpouring of high - energy gamma rays. Although they might be observed by gamma-ray detectors on satellites or balloons, it would be difficult to fly a detector large enough to have a reasonable chance of intercepting a significant number of gamma - ray photons from one explosion. One possibility

would be to employ a space shuttle to build a large gamma - ray detector in orbit. An easier and much cheaper alternative would be to let the earth's upper atmosphere serve as a detector. A high - energy gamma ray plunging into the atmosphere will create a shower of electron - positron pairs, which initially will be travelling through the atmosphere faster than light can (light is slowed down by interactions with the air molecules.) Thus the electrons and positrons will set up a kind of sonic boom, or shock wave, in the electromagnetic field. Such a shock wave, called Cerenkov radiation, could be detected from the ground as a flash of visible light.

A preliminary experiment by Neil A. Porter and Trevor C. Weekes of University College, Dublin, indicates that if black holes explode the way Hagedorn's theory predicts, there are fewer than two black hole explosions per cubic light - year per century in our region of the galaxy. This would imply that the density of primordial black holes is less than 100 million per cubic light-year. It should be possible to greatly increase the sensitivity of such observations. Even if they do not yield any positive evidence of primordial black holes, they will be very valuable. By placing a low upper limit on the density of such black holes, the observations will indicate that the early universe must have been very smooth and non-turbulent.

The big bang resembles a black-hole explosion but on a vastly larger scale. One therefore hopes that an understanding of how black holes create particles will lead to a similar understanding of how the big bang created everything in the universe. In a black hole, matter collapses and is lost for ever, but new matter is created in its place. It may therefore be that there was an earlier phase of the universe in which matter collapsed, to be re-created in the big bang.

If the matter that collapses to form a black hole has a net electric charge, the resulting black hole will carry the same

charge. This means that the black hole will tend to attract those members of the virtual particle-antiparticle pairs that have the opposite charge and repel those that have a like charge. The black hole will therefore preferentially emit particles with charge of the same sign as itself and so will rapidly lose its charge. Similarly, if the collapsing matter has a net angular momentum, the resulting black hole will be rotating and will preferentially emit particles that carry away its angular momentum. The reason a black hole 'remembers' the electric charge, angular momentum and mass of the matter that collapsed and 'forgets' everything else is that these three quantities are coupled to long-range fields; in the case of charge the electromagnetic fields, and in the case of angular momentum and mass the gravitational field.

Experiments by Robert H. Dicke of Princeton University and Vladimir Braginsky of Moscow state university have indicated that there is no long-range field associated with the quantum property designated baryon number. (Baryons are the class of particles including the proton and the neutrons.) Hence, a black hole formed out of the collapse of a collection of baryons would forget its baryon number and radiate equal quantities of baryon and antibaryons. Therefore, when the black hole disappeared it would violate one of the most cherished laws of particle physics, the law of baryon conservation.

Although Bekenstein's hypothesis that black holes have a finite entropy requires for its consistency that black holes should radiate thermally, at first it seems a complete miracle that the detailed quantum-mechanical calculations of particle creation should give rise to emission with a thermal spectrum. The explanation is that the emitted particles tunnel out of the black hole from a region of which an external observer has no knowledge other than its mass angular momentum and

electric charge. This means that all combinations or configurations of emitted particles that have the same energy, angular momentum and electric charge are equally probable. Indeed, it is possible that the black hole could emit a television set or the works of Proust in ten leatherbound volumes, but the number of configurations of particles that correspond to these exotic possibilities is vanishingly small. By far the largest number of configurations correspond to emission with a spectrum that is nearly thermal.

The emission from black holes has an added degree of uncertainty, or unpredictability over and above that normally associated with quantum mechanics. In classical mechanics one can predict the results of measuring both the position and the velocity of a particle. In quantum mechanics the uncertainty principle says that only one of these measurements can be predicted; the observer can predict the result of measuring either the position or the velocity but not both. Alternatively, he can predict the result of measuring one combination of position and velocity. Thus, the observer's ability to make definite predictions is in effect cut in half. With black holes the situation is even worse. Since the particles emitted by a black hole come from a region of which the observer has very limited knowledge, he cannot definitely predict the position or the velocity of a particle or any combination of the two; all he can predict is the probabilities that certain particles will be emitted. It therefore seems that Einstein was doubly wrong when he said, 'God does not play dice.' Consideration of particles emission from black holes would seem to suggest that God not only plays dice but also sometimes throws them where they cannot be seen.

(Scientific American Stephen Hawking.)

प्रतिविश्व (ऍटिविश्व) की खोज

विज्ञान नये मोड़ पर

सत्य के अन्वेषण में मानव को दर्शन की अंधगुहा से विज्ञान के चकाचींध तक की कठिन यात्रा करनी पड़ी है। सामान्य द्रव्य के परमाणुओं के नाभिक मूलतः घनात्मक आवेश वाले प्रोटोन और आवेशहीन न्यूट्रोन से बने होते हैं। तथा उस नाभिक (न्युक्लियस) के चारों ओर विभिन्न कक्षाओं में ऋण आवेश वाले इलेक्ट्रोन परिभ्रमण करते रहते हैं। परमाणुओं की आंतरिक संरचना की जानकारी से विश्व की भौतिक घटनाओं की संतोषजनक व्याख्या की जाने लगी। लेकिन वैज्ञानिकों ने पूरी तरह संतोषजनक सांस भी नहीं ली थी कि 1930 में पी.ए.एम डिराक ने इलेक्ट्रॉन के दो रूपों धन और ऋण आवेश के साथ की संभावना व्यक्त की। एंडर्सन ने थोड़े ही समय बाद धन-इलेक्ट्रॉन या पॉजिट्रान की वास्तविक उपस्थिति भी प्रयोगशालाओं में प्रदर्शित कर दी; और विज्ञान की यात्रा एक नये मोड़ पर आ गयी।

पॉजिट्रान इलेक्ट्रॉन का ऍटिकण हैं बिलकुल इलेक्ट्रॉन के दर्पण-बिंब जैसा प्रश्न उठता है, यदि ऍटिइलेक्ट्रॉन का अस्तित्व संभव है, तब तो ऍटिप्रोटोन और ऍटिन्यूट्रॉन की संभावना भी तर्क संगत है। पिछले कुछ वर्षों में शक्तिशाली त्वरितों की सहायता से ऍटिप्रोटान और ऍटिन्यूट्रॉन का अस्तित्व भी प्रायोगिक रूप से वैज्ञानिकों के मन में ऍटिपरमाणु और फिर ऍटिद्रव्य की भी बात उठने लगी। ऍटिद्रव्य के परमाणु सामान्य द्रव्य के परमाणुओं के ही संगत और समानित होंगे, लेकिन इन ऍटिपरमाणुओं के नाभिक ऍटिप्रोटॉन और ऍटिन्यूट्रॉन से बने होंगे और उनके चारों ओर घनात्मक आवेश वाले पाजिट्रॉन चक्कर काटते रहेंगे। ऍटिद्रव्य की संभावना अब कोरी कल्पना का विषय नहीं है। 1966 में कोलम्बिया यूनिवर्सिटी के प्रो. एल.एम. लिडरमैन ने प्रयोगशाला में भारी हाइड्रोजन के ऍटिद्रव्य ऍटियूट्रॉन की रचना की और अभी हाल ही में सोवियत वैज्ञानिकों ने ऍटिहीलियम तैयार किया है। हाइड्रोजन सृष्टि का सरलतम तत्व हैं। और जब उसके प्रतिरूपों के ऍटिद्रव्य प्रयोगशालाओं में बनाये जा सकते हैं, तब शायद वह दिन दूर नहीं

जब अन्य जटिल तत्वों ऑक्सीजन, लौह और यूरेनियम के भी ऍटिद्रव्यों का निर्माण किया जा सके।

ऍटिद्रव्यों के द्वीप

वैसे हमारी धरती पर ऍटिद्रव्य की उपस्थिति नैसर्गिक रूप में संभव नहीं है, क्योंकि पृथ्वी सामान्य कणों से बनी है। और यदि कोई ऍटिकण उत्पन्न भी हो तो वह सामान्य कणों से टक्कर लगाकर पूरी तरह विनष्ट हो जायेगा। अर्थात् प्रकाशकणों में रूपांतरित हो जायेगा। पृथ्वी पर ऍटिद्रव्य की उपस्थिति प्रायोगिक दृष्टि से विशेष महत्व नहीं रखती लेकिन संपूर्ण ब्रह्माण्ड के संदर्भ में यह धारणा वैधानिक चिंतन का एक नवीन आयाम प्रस्तुत करती हैं। ब्रह्मांड के असीम विस्तार में ऍटिद्रव्य के अनेक एकांत द्वीपों के अस्तित्व की संभावना व्यक्त की गयी है। जिनकी गवेषणा को मात्र शैक्षणिक विलास कहकर नहीं टाला जा सकता। हमारी अपनी आकाशगंगा में ही कर्कट नीहारिका (क्रेब नेबुला) से उत्सर्जित तीव्र रेडियो तरंगों के आधार पर कल्पना की जा सकती है कि उसका रेडियो उत्सर्जन ऍटिद्रव्यों के विनष्टीकरण से उत्पन्न होता है। हमारी आकाश गंगा से बाहर भी कुछ ऐसी नीहारिकायें हैं जो ऍटिद्रव्य से बनी प्रतीत होती हैं।

यदि किसी सामान्य नीहारिका और ऍटिनीहारिका के बीच टक्कर हो तो हम पूर्णतः ऍटिद्रव्य से बनी नीहारिका का पता लगा सकते हैं। क्योंकि ऐसे भीषण विस्फोट की स्थिति में असाधारण ऊर्जा उत्पन्न होती है। कुछ खगोल वेत्ताओं की मान्यता हैं कि वह असाधारण पिंड जिसे हम सिग्नस-ए के नाम से जानते हैं, ऐसी दो नीहारिकाओं का युग्म हैं। इसकी दूरी 2600 लाख प्रकाश वर्ष से भी अधिक है। फिर भी इससे पृथ्वी पर आने वाली रेडियो-तरंगों की ऊर्जा अत्यंत प्रबल होती है। आपस में टकराने वाली ये दोनों नीहारिका द्रव्य और ऍटिद्रव्य का निकाय हो सकता है। रेडियो खगोलज्ञों के परिकलनों के अनुसार 'सिग्नस-ए' की उत्सर्जित ऊर्जा, द्रव्य और ऍटिद्रव्यों से बनी नीहारिकाओं की टकराहट से उत्पन्न ऊर्जा (1044 अर्घ प्रति सेकेंड) के बराबर पायी गयी एक सामान्य-आकार की असाधारण रूप से दीप्ति नीहारिका एम-87 से भी संकेत मिलते हैं कि उसके तीव्र रेडियो- विकिरण किसी ऍटिनीहारिका से निःसृत ऍटिद्रव्य के प्रगृहण द्वारा उत्पन्न होते हैं। वैज्ञानिकों को कुछ ऐसे प्रमाण मिलने लगे हैं

जो ब्रह्मांडीय स्तर पर ऐंटिद्रव्य से बने आकाशीय पिंड के अस्तित्व की ओर संकेत करते हैं।

दो विश्वों की कल्पना

इस सन्दर्भ में प्रसिद्ध वैज्ञानिक मारिस गोल्ड हेबर की कल्पना बड़ी रोचक है जो वैदिक ऋषियों की सृष्टि सम्बन्धी धारणा के समान्तर प्रतीत होती है। गोल्ड हेबर ने आदि परमाणु (प्राइमेवल एटम) के सिद्धान्त के आधार पर संभावना व्यक्त की है कि सम्पूर्ण विश्व एक विराट कण 'यूनिवर्सन' से उत्पन्न हुआ। यह यूनिवर्सन, किन्हीं अज्ञात कारणों से शीघ्र ही 'कॉस्मन' और (ऐंटिकॉस्मन) नामक कणों में विभक्त हो गया और फिर दोनों कण अत्याधिक गतिज ऊर्जा के साथ एक दूसरे से पृथक् हो गये। इनमें पहले से 'विश्व' में ऐंटिकणों की उपस्थिति संभवतः ऐंटिविश्व के कुछ अवशिष्ट अंश के कारण हो सकती है। मूलकणों की समिति के सिद्धान्त की अमान्य घोषित कर देने के बाद कुछ खगोल शास्त्रियों के दो प्रथक् विश्वों की कल्पना काफी आकर्षक लगने लगी है। ऋषियों के 'को अधोवेदः कुतः इयं विसृष्टिः' जैसे प्रश्न आज भी वैज्ञानिकों के मन में गूँज रहे हैं। जो भी हो ऐंटिविश्व की कल्पना ने तत्व दर्शन करने के आयाम खोल दिये हैं। क्या पता किसी ऐंटिविश्व के एकांत कोने में बैठा कोई ऐंटिपाठक एक ऐंटिलेखक की रचना पढ़ रहा हो।

(डॉ. रमाकान्त पांडेय)

प्रति पदार्थ और उसके रहस्य

आज प्रति पदार्थ (एन्टीमैटर) मात्र कल्पना नहीं रह गया है बल्कि वास्तविकता है। अब वैज्ञानिक प्रति पदार्थ के रहस्यों की खोज कर रहे हैं। प्रख्यात वैज्ञानिक डॉ. लेडरमैन के अनुसार इस दृश्य जगत के समान एक अदृश्य जगत् भी है। प्रति पदार्थ के अस्तित्व के प्रमाण नाभिकीय भौतिकी में शोधरत अनेक वैज्ञानिकों को मिल चुके हैं।

सर्व प्रथम पॉल डिराक ने प्रकृति में विद्यमान समामिति के सिद्धान्त के आधार पर प्रतिकणों की कल्पना की थी। यद्यपि धन आवेश और ऋण आवेश में पूर्ण समामिति है फिर भी वैज्ञानिक इस बात से परेशान थे कि हल्के कण ही क्यों ऋण आवेशित होते और भारी कणों पर ही क्यों धन आवेश होता है। यह प्रकृति

में विद्यमान समामिति को नष्ट करता है इन्हीं विवेचनों ने पॉजिट्रान (धन आवेशित इलेक्ट्रान) और एन्टीप्रोटोन (ऋण आवेशित प्रोटान) की खोज की प्रेरणा दी।

यदि विपरीत आवेश वाले इन कणों को पास लाया जाये तो क्या होगा? यदि एक इलेक्ट्रान और एक पॉजिट्रान आपस में टकराये तो वे एक दूसरे को पतिया नष्ट कर देते हैं। उनकी कुल ऊर्जा गामा किरणों में परिवर्तित हो जाती है। कुल ऊर्जा से अभिप्राय इलेक्ट्रान और पॉजिट्रान के द्रव्यमानों के बराबर ऊर्जा व उनकी गतिज ऊर्जा के योग से है।

जब विराम अवस्था का एक ऐन्टीप्रोटान किसी प्रोटान से टकराता है तो वे केवल एक दूसरे का पूर्ण विनाश ही नहीं करते बल्कि इस प्रक्रिया से मेसान नामक अनेक अस्थायी और लघुजीवी कणों को जन्म देते हैं, जो बहुत ही अल्प समय में दूसरे प्रकार के मेसानों को जन्म देकर विघटित हो जाते हैं। ये मेसान पुनः पॉजिट्रानों और इलेक्ट्रानों में विघटन हो जाते हैं। ये प्रक्रियायें प्रोटान और न्यूट्रिनों का उत्सर्जन भी करती हैं। विराम अवस्था में प्रोटान और ऐन्टीप्रोटान के पूर्ण विनाश के परिणाम स्वरूप एक या दो इलेक्ट्रान इतने ही पॉजिट्रान और गामा व न्यूट्रिनों विकिरण उत्पन्न होते हैं। यदि ये इलेक्ट्रान और पॉजिट्रान फिर टकराये तो फिर कर्ण विनाश होता है, और परिणाम स्वरूप अधिक गामा विकिरणों का उत्सर्जन होता है। दूसरे शब्दों में प्रत्येक प्रोटान-ऐन्टीप्रोटान से तीन इलेक्ट्रान पॉजिट्रान युग्म उत्पन्न होते हैं।

जब एक ऐन्टीप्रोटान और पॉजिट्रान को पास-पास लाया जाता है तब क्या होता है? समामिति के आधार पर हम यह सोच सकते हैं कि वही घटना होगी जो एक प्रोटान और एक इलेक्ट्रान को पास लाने पर होती है अर्थात् एक परमाणु का निर्माण परन्तु यह एक कल्पना है। अभी तक पृथ्वी पर प्राकृतिक रूप से कोई प्रति-पदार्थ प्राप्त नहीं हुआ। सिवाय वायुमंडल में कास्मिक किरणों द्वारा उत्पन्न प्रति-पदार्थ के यदि सौर परिवार में प्रति पदार्थ होता तो उसका संसूचना बहुत ही आसान था। यदि संसूचक गायब हो जाते तो भी यह सिद्ध होता कि प्रति पदार्थ मौजूद था।

अन्तरिक्ष अन्वेषि यान चन्द्रमा, शुक्र और मंगल पर बिना पूर्व नष्ट हुए उतरे हैं। यह इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि सौर परिवार के ये पिण्ड साधारण पदार्थ

से बने हैं। सूर्य अपने कोराना के विस्तार से बनी वायु और कभी-तभी कार्मिक किरण कण उत्सर्जित करता है। यदि सौर पवन और सूर्य द्वारा उत्सर्जित ऊर्जा युक्त कण प्रति-पदार्थ से बने होते तो वे अपने सम्पर्क में आने वाले अन्तरिक्ष यानों का पूर्ण विनाश कर देते हैं। यदि हमारे सौर परिवार का कोई भी ग्रह प्रति पदार्थ से बना होता तो सौर पवन की क्रियाएँ उसे गामा किरणों का प्रबलतम स्रोत बना देती। लेकिन ऐसा कोई ग्रह नहीं है। इसलिए हम यह कह सकते हैं कि सम्पूर्ण सौर परिवार केवल निश्चय पूर्वक पदार्थ का ही बना है।

ब्रह्माण्ड में प्रति-पदार्थ की उपस्थिति के प्रत्यक्ष प्रमाण अभी तक नहीं मिले हैं। कास्मिक किरणों में एन्टीप्रोटानों के हाल के प्रायोगिक प्रेक्षण आकाश गंगा से कास्मिक किरणों के संचरण द्वितीयक उत्पादक के अनुरूप हैं। कास्मिक किरणों में अभी तक कोई प्रति नाभिक नहीं मिला है। प्रयोगशाला में भी यद्यपि केवल एन्टीड्यूट्रास और एन्टीहीलियम नाभिक ही बनाये गये हैं लेकिन प्रति परमाणु नहीं बनाये जा सके हैं। तकनीकी रूप में उनका निर्माण जटिल कार्य है।

प्रति पदार्थ कहाँ गया?

ब्रह्माण्ड के समामिति सिद्धान्त के समर्थकों की यह मान्यता है कि आज से लगभग 15 अरब वर्ष पूर्व जो अत्यंत विशाल विस्फोट हुआ था और जिसके फलस्वरूप ब्रह्माण्ड का निर्माण हुआ था उसमें केवल पदार्थ (द्रव्य) ही नहीं वरन् समान मात्रा में प्रति पदार्थ भी बना था। भौतिक शास्त्रियों का यह भी कहना है कि जब पदार्थ और प्रति-पदार्थ आपस में टकराते हैं तो वे एक-दूसरे को पूर्ण रूप से नष्ट कर देते हैं। उक्त विस्फोट के बाद भी पदार्थ और प्रति-पदार्थ परस्पर टकराये थे। उन्होंने एक दूसरे को नष्ट किया। ऐसा क्यों हुआ? साथ ही महा विस्फोट के फलस्वरूप निर्मित प्रति-पदार्थ कहाँ गया? क्योंकि ब्रह्माण्ड में अब तक कहीं भी प्रति-पदार्थ का एक टुकड़ा नहीं मिला है।

इन अनबूझ पहेलियों का उत्तर चार वैज्ञानिकों, जेम्स डब्लू. क्रोनिन, वालएल.फिच, रेने तुर्ली और जेम्स क्रिश्चियनसन ने ढूँढ निकाला है। उन्होंने इन अनबूझ पहेलियों का उत्तर सुझाने वाले अनुसंधान 1964 में न्यूयार्क की ब्रकहैवन नेशनल यूनिवर्सिटी में किये थे।

वैज्ञानिकों का यह दल भौतिक कणों के व्यवहार पर अनुसंधान कर रहा था

कि उसके सामने एक अनहोनी घटना घटी। दल के वैज्ञानिकों ने पाया कि हर एक हजार क्रियाओं में 'केअसोन' दो बार प्राकृतिक और सर्वमान्य नियमों का उल्लंघन करते हैं। केमेसोन ऐसे मौलिक अस्थायी कण हैं जिन पर कोई आवेश नहीं होता। उनकी अर्ध आयु बहुत कम होती है और उनका द्रव्यमान प्रोटान से आधा होता है। प्राकृतिक नियमों के अनुसार एक के-मेसोन का हास होने पर पाई मेसोनो (पीओन) का एक जोड़ा बनना चाहिये। पर उक्त वैज्ञानिक ने पाया कि एक के-मेसोन कभी-कभी (1000 बार में दो बार) उपीओनों को जन्म देता है। यह सममिति सिद्धान्त का अपवाद था। इतने सूक्ष्म अपवाद का पता लगाना अपने आपमें एक आश्चर्य जनक उपलब्धि थी। पर उसमें कहीं आश्चर्य जनक था इस अपवाद का एक न सुलझने वाली गुत्थी का हल करने में महान योग इससे यह एकदम स्पष्ट हो गया कि प्रकृति प्रति पदार्थ की तुलना में पदार्थ को अधिक महत्व देती है। इससे यह निष्कर्ष निकालना भी एकदम आसान हो गया कि ब्रह्माण्ड में केवल पदार्थ ही क्यों पाया जाता है, प्रति-पदार्थ क्यों नहीं—इसको दूसरे शब्दों में इस प्रकार भी कहा जा सकता है।

ब्रह्माण्ड का निर्माण करने वाले महाविस्फोट के प्रथम कुछ क्षणों में पदार्थ के निर्माण की गति प्रति-पदार्थ के निर्माण की गति से कहीं अधिक तीव्र थी इससे सम्भवतः प्रति पदार्थ की तुलना में पदार्थ का निर्माण अधिक मात्रा में हुआ और जब बराबर मात्राओं में पदार्थ और प्रति-पदार्थ आपस में टकराये तो दोनों की समान मात्रायें नष्ट हो गईं। पर उसके बाद भी इतना पदार्थ बच गया जिससे सब खगोलीय पिण्ड बन गये।

सममिति सिद्धान्त के उक्त अपवाद की खोज में उन चारों वैज्ञानिकों का जितना नाम ऊपर दिया है, महत्वपूर्ण योग दान था पर नोबेल पुरस्कार (भौतिकी वर्ष 1980) केवल 2 वैज्ञानिकों जेम्स डब्लू. क्रोनिन और वाल.एल. फिच को ही प्रदान किया गया।

रेने तुर्ली और जेम्स क्रिश्चियनसन को नोबेल पुरस्कार में भागीदर न बनाये जाने पर उस समय वैज्ञानिक संसार में काफी क्षोभ था। क्रिश्चियन सम को भागीदार न बनाये जाने का कारण कुछ लोगों के अनुसार यह भी था कि जिस समय उन्होंने सममिति सिद्धान्त के अपवाद की खोज में योग दिया, उस समय वे ग्रेजुएट विद्यार्थी ही थे।

तारों के “प्रलय” का परिणाम

नोवा और सुपरनोवा

सृष्टि में आये दिन होने वाले परिवर्तनों में तारकीय विस्फोट भी मुख्य है। पृथ्वी से दिखने वाले इन छोटे-छोटे तारों में अचानक होने वाले विस्फोट को तारकीय प्रलय की संज्ञा भी दी जा सकती है। इस विस्फोट के परिणामस्वरूप ही निर्माण होता है नोवा (नवतारा) और सुपरनोवा (अधिनवतारा) का। इस विस्फोट के दौरान किसी भी विस्फोटित होने वाले तारे की चमक या ज्योति अचानक बहुत अधिक बढ़ जाती है जो कि पृथ्वी से भी स्पष्ट दिखायी देती है। तारे से विस्फोट होते ही बनता है नया तारा जिसकी पहचान उसकी चमक से हो जाती है। जो तारे विस्फोटिक होकर धीरे-धीरे अपनी ज्योति बढ़ाते हैं नोवा कहलाते हैं। “नोवा” लातिनी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है नया।

किसी नये तारे के निर्माण के समय विस्फोट के पहले और विस्फोट के बाद तारे की ज्योतिक में निरन्तर बढ़ोतरी और उसकी परम कांतिमान का माप इन बनने वाले नये तारों को दो श्रेणी में विभाजित कर देती है। जिन्हें ‘नोवा’ और ‘सुपरनोवा’ कहते हैं। पहली श्रेणी के अन्तर्गत वे तारे आते हैं जिनकी ज्योति लगभग 10,000 गुना बढ़ जाती है उन्हें नोवा कहते हैं और जिन तारों की ज्योति 10,000 से भी अधिक हो जाती है वे दूसरी श्रेणी में आते हैं और उन्हें सुपरनोवा कहते हैं। खगोल शस्त्रियों के अनुसार नोवा संपुंजित तारों के विकास की साधारण अवस्था है लेकिन सुपरनोवा बनने की प्रक्रिया अत्याधिक जटिल है और खगोल वैज्ञानिक अभी तक इसके प्रति कुछ अधिक जिज्ञासु हैं।

तारों के विस्फोट के समय साधारण तारे से नये तारे बनने की प्रक्रिया में विस्फोट के समय के अन्तराल में तारों की चमक में विस्फोट के समय के अन्तराल में तारों की चमक में अत्यधिक अस्थिरता उत्पन्न हो जाती है। इस नये तारे के निर्माण के पूर्वनोवा तथा पश्चनोवा दो बिन्दु बन जाते हैं। जिनके बीच में तारे की चमक में उत्पन्न अस्थिरता को ग्राफ द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है। नोवा को तारों के मध्य उसकी चमक के कारण यहाँ तक कि पूर्वनोवा की स्थिति में भी स्पष्ट रूप से पहचाना जा सकता है। जब अन्तरिक्ष में कोई तारा फटता है तो एक

निश्चित समय में उससे इतनी अधिक ऊर्जा निकलती है कि तारे के चारों ओर के वातावरण में विस्तार हो जाता है।

हमारी एक आकाशगंगा एक विशाल नीहारिका (गैलेक्सी) है जिसमें 100 अरब से भी ज्यादा तारे हैं जिनमें से कई सूर्य से छोटे हैं तो कई सूर्य से भी बड़े। ये सभी तारे अपनी तापनाभिकीय ऊर्जा के कारण चमकते हैं जिसका मुख्य ईंधन है हाइड्रोजन। इन तारों की हाइड्रोजन समाप्त होने के बावजूद भी उसमें उच्च ताप पर कार्बन, नाइट्रोजन, आक्सीजन लोहे आदि भारी तत्व विद्यमान रहते हैं। ऐसे तारे कभी-कभी अपने वाह्य कवच के द्रव्य को अंतरिक्ष में उछाल देते हैं जिसमें तारे की चमक अचानक बढ़ जाती है और इसी तारे को कहते हैं नोवा।

खगोल विज्ञान में दुर्लभ दर्शन वाले सुपरनोवा विस्फोट घटना बड़े महत्व की है। सुपरनोवा के संबंध में खगोलशास्त्रियों का कहना है कि औसतन 350 वर्ष में एक बार प्रत्येक नीहारिको में एक दूधिया रंग का सुपरनोवा प्रकट होता है। उदाहरण स्वरूप 7 फरवरी, 1951 में वलयाकर नीहारिक एन जी सी 5457 में एक सुपरनोवा देखा गया था जिसकी परम ज्योति संपूर्ण नीहारिका की ज्योति से जिसमें 100 अरब तारे थे, लगभग दस हजार गुनी थी, इस प्रकार एक अकेले इस सुपरनोवा की ज्योति 10 लाख तारों की संयुक्त ज्योति के बराबर थी। 23 फरवरी, 1987 को दिखायी देने वाला सुपरनोवा विस्फोट 170,000 साल पहले घटित हुआ था। सूर्य से 20 गुना बड़ा यह तारा जिसमें 170,000 प्रकाश वर्ष दूर (तीन लाख कि.मी. सेकंड के वेग से प्रकाश किरणें एक वर्ष में जितनी दूरी तय करती हैं उसे एक प्रकाश वर्ष दूरी कहते हैं) था। जब यह विस्फोटित हुआ तो 170,000 वर्ष बाद उसका विकिरण धरती पर पहुँचा और वह हमें दिखायी देने लगा। इस विस्फोट के बाद बचा अवशेष सघन गुठली के रूप में बचा रह जाता है। जिसका भार कई करोड़ टन हो सकता है, इसे न्यूट्रान तारा कहते हैं। यों तो सुपरनोवा विस्फोट बड़ी ही दुर्लभ घटना है लेकिन अभी भविष्य में सूर्य के समीप के किसी बड़े तारे में यदि सुपरनोवा विस्फोट हुआ तो सृष्टि के प्रलय की सम्भावना को नकारा नहीं जा सकता। क्योंकि उसके द्रव्य और विकिरण के भीषण आघातों से सृष्टि के संहार होने में कोई देर नहीं लगेगी।

सुपरनोवा रोल्टन

खगोल वैज्ञानिकों ने हाल ही में यह खोज की है कि एक अत्यंत विशाल तारा, रोल्टन-1987 से विस्फोटित हो रहा है। उसके विस्फोट से अधोपर भविक कण न्यूट्रिनो की तरंगें निकल रही हैं। न्यूट्रिनो की इन तरंगों का पता संयुक्त राज्य अमेरिका के वैज्ञानिकों के अतिरिक्त जापान और सोवियत रूस के वैज्ञानिकों ने भी लगाया है। रोल्टन-1987 ए के विस्फोट में वैज्ञानिकों को ऐसे नये तथ्य ज्ञात हो रहे हैं जिनकी मदद से ब्रह्माण्ड के प्रसार के बारे में निष्कर्ष निकालने में मदद मिलेगी। वैज्ञानिकों के लिये यह निष्कर्ष निकालना आसान होगा कि क्या ब्रह्माण्ड फैल रहा है या सिकुड़ रहा है। क्या ब्रह्माण्ड फैलते-फैलते एक दिन समाप्त हो जायेगा, अथवा खगोलीय पिण्ड अनन्त काल तक एक दूसरे से दूर भागते रहेंगे।

खगोल वैज्ञानिकों के अनुसार रोल्टन-1987ए एक विशेष प्रकार का सुपरनोवा है क्योंकि उसके अधिकतम प्रकाशवान स्तर पर पहुँचने के पहले ही उसकी खोज कर ली गई थी। वह 'ग्रेट मैगेलानिक क्लाउड' नीहारिका में स्थित है। यह नीहारिका हमारी आकाश गंगा के निकट है। विचित्र बात यह है कि रोल्टन-1987ए का विस्फोट आज से लगभग 1,70,000 वर्ष पूर्व आरंभ हुआ था पर उसका प्रकाश, तीन लाख किलोमीटर प्रति सैकंड की गति से चलते रहने के बावजूद, अब पृथ्वी पर पहुँचा है।

सुपरनोवा रोल्टन-1987ए को प्रथम बार कनाडा के एक वैज्ञानिक ने, चिली स्थित लास कम्पानास वेधशाला, से देखा था। रोल्टन-1987ए से निकलने वाली प्रकाश तरंगें इतनी चमकीली हैं कि उन्हें खाली आंख से भी देखा जा सकता है।

(विज्ञान प्रगति)



आचार्य कनकनंदीजी गुरुदेव से वैज्ञानिक

ए.पी. जैन की भेंट वार्ता / तत्वचर्चा

आचार्यश्री कनकनंदीजी गुरुदेव के युगानुकूल, उदारवादी वैज्ञानिक दृष्टिकोण "सर्वजीव हिताय सर्वजनसुखाय" की भावना, निच्छल, निःस्वार्थ, भेदभावरहित व्यवहार, सत्यनिष्ठ अनाग्रही दृष्टिकोण, तार्किक-वैज्ञानिक दृष्टिकोण एवं तदनुकूल उनके समीक्षात्मक साहित्य, शिविर, संगोष्ठी, वेबसाइट इत्यादि से प्रभावित होकर दिगम्बर जैन, श्वेताम्बर, हिन्दू, देश-विदेश के अनेकों उच्चस्तरीय लोग उनसे तत्वचर्चा करने के लिए, शंका-समाधान करने के लिए, अध्ययन एवं धर्मप्रचार के लिए आते रहते हैं। इसी क्रम में एक सत्यनिष्ठ जिज्ञासु, सरलस्वभावी (रावतभाटा अणुविद्युत केंद्र के वैज्ञानिक) ए.पी. जैन भी 5-6 वर्षों से लगातार आचार्य श्री के पास अनेकों बार आकर अध्ययन, शंका-समाधान, मार्गदर्शन प्राप्त कर रहे हैं। कभी-2 पत्र एवं ई-मेल के माध्यम से भी कार्य करते हैं। अनेकों वर्षों से आचार्यश्री के शोधपूर्ण साहित्य का भी अध्ययन कर रहे हैं। अभी कुछ महीनों से आचार्यश्री द्वारा समीक्षित प्रवचनसार की टीका "सत्यसाम्यसुखामृतम्" का वहाँ के कुछ वैज्ञानिक मिलकर अध्ययन भी कर रहे हैं। आचार्यश्री ने प्रवचनसार के बाद "विश्व द्रव्य विज्ञान" (द्रव्यसंग्रह), "आध्यात्मिक मनोविज्ञान" (इष्टोपदेशे) अहिंसा का विश्वरूप (पुरुषार्थसिद्धयुपाय) आदि ग्रंथों का अध्ययन करने के लिए मार्गदर्शन दिया है। ये सभी ग्रंथ आचार्यश्री द्वारा समीक्षित हैं।

आचार्यश्री इनकी प्रतिभा एवं रुचि को देखकर स्वआशीर्वाद से स्थापित 'धर्म दर्शन विज्ञान शोध संस्थान' एवं 'धर्म दर्शन सेवा संस्थान' में उन्हें अभी सदस्य रूप में प्रतिज्ञा दिलायी; क्योंकि आचार्यश्री की दोनों संस्थाओं में ऐसे ही उच्चस्तरीय व्यक्ति तन-मन-धन-समय-श्रम से सेवारत हैं। इस बार ए.पी. जैन के पिताजी भी उनके साथ आये हुए थे। उनके पिताजी से पता चला कि इससे पहले ए.पी. जैन धर्म से विमुख रहते थे एवं धर्म के प्रति रुचि नहीं थी। उन्होंने कहा- जबसे आपके पास आने लगे एवं आपके साहित्य का अध्ययन करने लगे तबसे वे हमसे भी अधिक धार्मिक एवं धार्मिक कार्यों में योगदान कर रहे हैं। इस बार की भेंटवार्ता संक्षिप्त में इसप्रकार है।

आचार्यश्री : आपके पिताजी से पता चला कि आप पहले धर्म में रुचि नहीं लेते थे इसका क्या कारण है? क्योंकि मैं 5-6 वर्ष से मानवीय प्रकृति का एवं भारतीयों का अध्ययन कर रहा हूँ। इस उद्देश्य से ये प्रश्न आपसे कर रहा हूँ।

ए.पी. जैन : आचार्यश्री आपके पास आने से पहले मुझे धर्म में क्रियाकाण्ड, अंध परम्परा, रीतिरिवाज ही दिखाई देते थे। इससे पहले मुझे कार्य-कारण संबंध मालूम नहीं थे और मुझे कोई बताते भी नहीं थे परंतु आपके पास आने पर एवं आपका साहित्य पढ़ने के बाद ये परिज्ञान हुआ कि धर्म पूर्ण सत्य है एवं शांति का मार्ग है; कार्य-कारण के सिद्धान्त पर आधारित है और विज्ञान से भी आगे है।

आचार्यश्री : (प्रसन्नता से) Very good मैं स्वयं भी इस धारणा, मान्यता हूँ और मेरे पास जो भी देश-विदेश के बड़े-2 वैज्ञानिक मनीषी आ रहे हैं वे भी इसी धारणा के ही हैं। उनमें से अधिकांश आपके समान ही थे और मेरे संपर्क से अब वे सामान्य धार्मिक से भी अधिक धार्मिक हैं। इसीलिए वे मेरे साहित्य आदि के लिए तन, मन, धन, समय, श्रम से स्वेच्छा से समर्पित हैं। महत्वपूर्ण विषय यह है कि सामान्यतः धार्मिक रुढ़िवादी लोग अधिक अधार्मिक होते हैं क्योंकि उनमें सत्यनिष्ठा, उदारता, सहिष्णुता, सरलता, सहजता आदि भाव जो यथार्थ से धर्म है वह नहीं होते हैं बल्कि पंथवाद, जातिवाद, ईर्ष्या, द्वेष आदि से ग्रसित होते हैं। आप स्वयं एक वैज्ञानिक हो और मैं आपको संस्था में सदस्यरूप में स्वीकार कर रहा हूँ इसीलिए मैं आपको धर्म का सार्वभौम सिद्धान्त बता रहा हूँ वह यह है कि “भाव की पवित्रता एवं प्रत्येक जीव के प्रति सद्ब्यवहार ही यथार्थ से धर्म है और जो इससे युक्त है वही धार्मिक है अन्य तो धर्म के नाम पर ढोंग, पाखण्ड अधर्म है।”

ए.पी. जैन : आचार्यश्री प्रमाण सप्तभंगी एवं नय सप्तभंगी किसे कहते हैं?

आचार्यश्री : इसका विस्तृत वर्णन मैंने अपनी कृति “अनेकांत सिद्धान्त” में किया है उसका आपने अध्ययन नहीं किया क्या? अभी मैं आपको संक्षिप्त में बताऊँगा। प्रमाण=(प्र+मान) ‘प्र’ अर्थात् प्रकृष्ट, ‘मान’ माने मापना, जानना अर्थात् केवलज्ञान ही प्रमाण है और ज्ञान की अपेक्षा जो अस्तित्व, नास्तित्व, अवक्तव्य आदि सप्तभंग बनते हैं वह प्रमाण सप्तभंगी है अर्थात् द्रव्य का पूर्णज्ञान प्रमाण है और उसकी सप्तभंगी ‘प्रमाण सप्तभंगी’ है। उस पूर्णज्ञान का अंश या वस्तु स्वरूप का आंशिक ज्ञान ‘नय’ है। इस विषय को विभिन्न लौकिक, आध्यात्मिक, वैज्ञानिक

ढंग से समझाते हुए आचार्यश्रीने बताया कि जैन धर्म का प्राण अनेकांत है। अनेकांत से युक्त मिथ्यामत भी सम्यक् बन जाता है और अनेकांत से रहित जैन धर्म भी एकांत बन जाता है, मिथ्याधर्म बन जाता है। इसीलिए अनेकांत जैन धर्म का प्राण, बीज, आत्मा, चिन्ह है। जो एकांत का आग्रह करते हैं भले वे जैनधर्म के ग्रंथों के आधार पर बोलते हैं पर वे जैन धर्मावलम्बी नहीं है बल्कि जैन द्रोही, जैन धर्म के विद्रोही हैं।

ए.पी. जैन : क्या कार्य एवं कारण दोनों एक साथ होते हैं? क्या कार्य-कारण सर्वथा भिन्न हैं या अभिन्न हैं? कौन किसका नियामक है?

आचार्यश्री : इसका समाधान भी अनेकांत दृष्टि से हो सकता है। कारण से कार्य होता है एवं कार्य से कारण का अनुमान भी लगाया जा सकता है। योग्य अंतरंग कारण एवं बहिरंग कारण के सद्भाव एवं विरोधी कारणों के अभाव से कार्य होता है। जिसप्रकार चावल, अग्नि, पानी, बर्तन के सम्यक् संयोजन से भात बनता है। पृथक्-2 रूप से इन कारणों के सद्भाव से भी भात नहीं बन सकता है। कभी-2 कारण स्वयं कार्यरूप में बाह्य निमित्त को प्राप्त करके कार्य बनता है- जैसे पानी बाह्य निमित्त को प्राप्त करके बर्फ बनता है। सम्यक् दर्शन सम्यग्ज्ञान युगपत होते हुए भी सम्यग्दर्शन कारण है, सम्यग्ज्ञान कार्य है तथापि सम्यग्दर्शन के पहले सामान्य ज्ञान होता है। दीपक के प्रकाश से अंधकार दूर होता है इसमें प्रकाश का होना एवं अंधकार का दूर होना एक साथ होते हुए भी प्रकाश होना कारण है एवं अंधकार दूर होना कार्य है। सिद्ध भगवान् मनुष्य लोक में आठों कर्मों को नष्ट करके मुक्त होते हैं और एक ही समय में मनुष्य लोक से 7 राजू दूरी (असंख्यात मील) पर विराजमान हो जाते हैं। इसीप्रकार घड़े को फोड़ने पर खप्पर हो जाते हैं। घड़े का फूटना एवं खप्पर का बनना दो कार्य होते हुए भी समय भेद नहीं है।

ए.पी. जैन : सम्यक् नियतिवाद तथा अनेकांतवाद दोनों एक ही है?

आचार्यश्री : नहीं, दोनों एक नहीं है क्योंकि नियतिवाद केवल नियति का प्रतिपादन करता है जबकि अनेकांतवाद समस्त वादों का प्रतिपादन करता है। अनेकांतवाद का एक ही भाग नियतिवाद है इसीलिए सम्यक् नियतिवाद भी अनेकांतवाद नहीं है; क्योंकि एक गुण कभी भी संपूर्ण गुणों का योग समूह नहीं हो सकता है। जिसप्रकार आत्मा स्वयं ज्ञानमय होते हुए भी और ज्ञान आत्मा का एक गुण होते हुए भी ज्ञान ही आत्मा नहीं है क्योंकि आत्मा में अस्तित्व, वस्तुत्व, प्रमेयत्व, अगुरुत्व,

दर्शन, सुख, वीर्य आदि अनंतगुण विद्यमान हैं। यदि केवल ज्ञानमात्र को ही आत्मा कहेंगे तो अन्य अनंतगुण लोप हो जायेगे जिससे आत्मद्रव्य का ही लोप हो जायेगा। कार्य के लिए 1. द्रव्य, 2. क्षेत्र, 3. काल, 4. भाव चाहिए। जिसे स्वचतुष्टय या चतुष्टय कहते हैं। इसकी हम विज्ञान के 'चतुःआयाम सिद्धान्त' से तुलना कर सकते हैं। इसके साथ 2 पूर्वाचार्यों ने 5 कारणों से कार्य माना है यथा 1. काल, 2. स्वभाव, 3. नियति, 4. पूर्वकृत, 5. पुरुषार्थ। इनमें से नियति केवल एक है इसीलिए सम्यक् नियति उनमें से केवल एक होने से यह सम्यक् एकांत हो सकता है लेकिन सम्यक् अनेकांत नहीं हो सकता है। नियति का ही केवल आग्रह करने से वह सम्यक् नियतिवाद भी नहीं रहेगा बल्कि वह मिथ्या नियतिवाद हो जायेगा। दूसरा एक आध्यात्मिक रहस्य यह भी है कि जिसका अभिप्राय मिथ्या एकांत से ग्रसित है वह बचन से अनेकांत का प्रतिपादन करते हुए भी मिथ्या ही रहेगा क्योंकि बक्ता के अभिप्राय के अनुसार अनेकांत, स्याद्वाद एवं कथन की प्रामाणिकता होती है। मुझे दुःख है कि महान उदारवादी, अनेकांतमय जैन धर्मावलम्बियों में भाव अहिंसा रूपी अनेकांत, वाचनिक अहिंसा रूपी स्याद्वाद, व्यावहारिक अहिंसारूप दया, क्षमा, करुणा, संवेदना, परोपकार एवं सामाजिक अहिंसा स्वरूप अपरिग्रह जीवंत रूप में नहीं हैं। जो कुछ है मृत, परम्परा रूप में है। जिसके कारण जैनधर्म में कलह, विग्रह, अशांति, शीतयुद्ध, गृहयुद्ध चल रहे हैं। अभी आवश्यकता है आप जैसे प्रतिभाशाली व्यक्तियों की जो सजग सतर्क रहकर पुरुषार्थ करके समग्र क्रांति करें एवं जैनधर्म को विश्व-स्तर तक पहुँचाकर विश्व में सुख, शांति, समृद्धि की स्थापना करें। इसीलिए मेरा नारा है- "आप मुझे सहयोग दो, मैं आपको वैज्ञानिक धर्म दूँगा।"

- *The essence of education is that, it should be religious.*

(A.N. Whitehead)

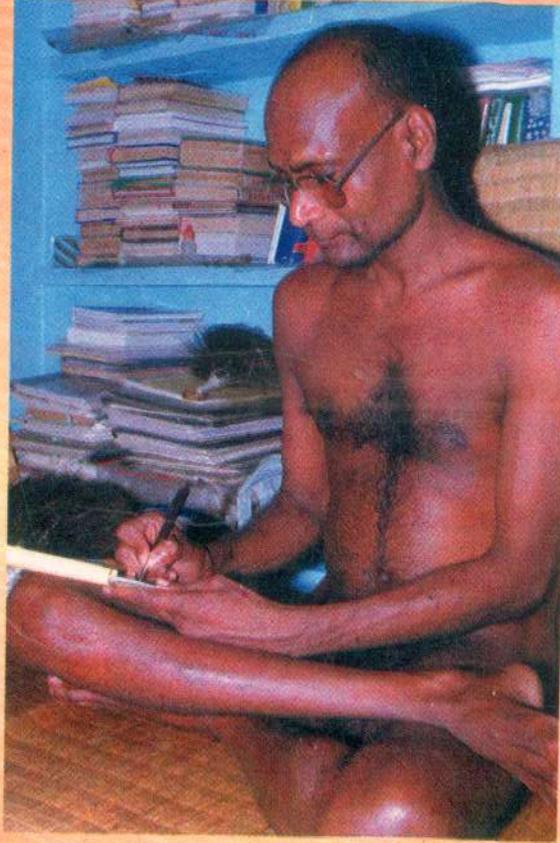
- *Action is the end of thought*

(Romyarollo)

- *Knowledge is the treasure but practice is the key of it.*

(Thomos)

स्वाध्याय ग्रंथ रचना में लीन आ. स्न श्री कनकनंदीजी गुरुदेव



**TO MAKE OTHERS IDEAL,
IT IS MUST TO BE IDEAL FIRST.**

दूसरों को आदर्श बनाने से पूर्व स्वयं आदर्श बनना श्रेष्ठ है।

आ. कनकनंदीजी गुरुदेव

प्रकाशक : धर्म-दर्शन-विज्ञान शोध संस्थान